धर्म पर लेनिन के विचार

अनुवादक

श्री कृष्णदास

१६४६

प्रकाशक
इंडिया पब्लिशर्स
इलाहाबाद

मुद्रक
केशवप्रसाद खत्री,
इलाहाबाद ब्लक वर्क्स लि०
इलाहाबाद

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक में लेनिन के धर्म सम्बन्धी वे थोड़े से लेख संग्रहीत हैं जिन्हें उन्होंने समय-समय पर लिखा था। इस संकलन में दर्शन अथवा दर्शन सम्बन्धी विश्लेषण और आलोचना ढूढ़ना ग़लत होगा। इसमें प्रचलित धर्म सम्बन्धी धारणाओं के प्रति सही रुख क्या है, केवल यही बताया गया है।

रूस में, हमारे ही देश की तरह धर्म के नाम पर अबोध, अनपढ़ जनता पर सदियों से अत्याचार होता चला आया था। धर्म का अफ़ीम खाकर सदियों से सोने वाली जनता अगर कटु अनुभवों के कारण कभी हिलने-डुलने, जुम्बिश खाने का प्रयत्न भी करती तो उसे कभी लोरियाँ गा कर सुला दिया जाता, कभी बन्दूख के कुन्दों से पीट कर बेहोश कर दिया जाता। यह प्रक्रिया अबाध रूप से सामन्तवादी और पूँजीवादी युग में चलती रही।

लेकिन मार्क्स और एङ्गिल्स की दार्शनिक खोजों और स्थापनाओं के बाद मेहनतकश जनता को नई रोशनी मिली और उसे प्रगति-पथ पर बढ़ते चलने के लिये नया सम्बल मिला। यह नई स्थापना-या दर्शन-जो कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नाम से प्रचलित है—तमाम प्राचीन धार्मिक रुढ़िग्रस्त स्थापनाओं और मानताओं के लिए एक चुनौती बनकर आई। इस ज्योति-पुञ्ज के सामने सदियों की रूढ़िवादी, परम्परागत, तमिस्त्रित दार्शनिक स्थापनायें जिनका आधार मिथ्या विश्वास था—गलने लगीं। परन्तु, यहीं पर एक ग़लती हुई।

योरोप के समाजवादी विचारकों का एक बड़ा दल मार्क्सवादी विचार धारा को भी, प्रचीन धार्मिकरूढ़ियों की भाँति; अपरिवर्तन-शील तथा वेद वाक्य बनाने पर तुल गया। इतना ही नहीं, इसी दल के कुछ लोग सर्वहारा के श्रेणी-संघर्ष से अधिक ध्य'न इस धर्म सम्बन्धी संघर्ष,की ओर देने लगे। इससे सर्वहारा तथा इसके साथ ही किसान तथा निम्न मध्यम श्रेणी की जनता को पथ-भ्रान्ति होने लगी। इसका असर रूस के अच्छे से अच्छे दार्शनिकों और विचारकों पर पड़ा। यहाँ तक कि मैक्सिम गोर्की जैसे प्रकाण्ड पण्डित भी इसके छींटों से अपने दामन को बचा न पाये। कई बार वह भी फ़िसल गये।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि अन्य ग़ुलाम देशों की जनता की भाँति हमारे देश की श्रमिक-शोषित जनता के लिये भी एक ही दर्शन ग्राह्य है और वह है मार्क्सवादी दर्शन—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। इस द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रचार करते समय प्राचीन धार्मिक दर्शनों, स्थापनाओं और मानताओं का खण्डन करना होगा। राजनैतिक आर्थिक संघर्ष के साथ ही दार्शनिक क्षेत्र में भी संघर्ष चलता रहेगा। लेकिन दार्शनिक क्षेत्र का यह संघर्ष कहीं राजनैतिक-आर्थिक संघर्ष को ढँक न ले, उसे दबा न दे, या इसके कारण हमारी बात सुनने, मानने वाली जनता हमसे दूर न खिंच जाय इसका ध्यान रखना होगा। लेनिन ने कहा है कि इस मामले में हमें अधिक से अधिक सतर्क रहना चाहिये।

हिन्दुस्तानी मार्क्सवादियों के सामने कठिन काम है। देश

धार्मिक रूढ़ियों से ग्रस्त है। साथ ही, जनता ग़ुलाम, अनपढ़ और ग़रीब है। राजनैतिक-आर्थिक लड़ाई लड़ते हुये ही वह इन धार्मिक रूढ़ियों और मिथ्या धारणाओं से मुठभेड़ ले सकती है। उस जनता का पथ-प्रदर्शन करने वाले कार्य-कर्ता इस पुस्तक से भरपूर लाभ उठा सकते हैं। इसीलिये यह अनुवाद हिन्दी में किया गया है।

मुझे इस अनुवाद में बहुत कठिनाई हुई। प्रयास यह था कि पुस्तक की भाषा साधारण, चुस्त और बोल-चाल की हो। लेकिन इस अनुवाद से मेरा जी नहीं भरा। एक तो, लेनिन की कृतियों का अनुवाद यों ही कठिन है, फिर हिन्दी में ऐसे शब्दों की कमी जो कि अँग्रेज़ी प्रति शब्दों का सही अर्थ दे सकें, अनुवाद कार्य को अधिक कठिन बना देती है। जब तक वैज्ञानिक, दार्शनिक और राजनैतिक विदेशी शब्दों (विशेषतया अँग्रेज़ी) के प्रति शब्द हिन्दी में न बन जाँय यह कठिनता कम न होगी। भाषा-विज्ञान के पण्डितों और मार्क्सवादी विद्वानों का ध्यान मैं इस ओर खींचना चाहता हूँ।

अनुवाद में इस बात का ध्यान रखा गया है कि शब्दों की कठिनता के कारण भाव दुरूह न हो जाँय। विश्वास है, पुस्तक पाठकों को पसन्द आयेगी और धर्म के प्रति अपना रुख़ निश्चित करने में उनको यह पुस्तक पूरी सहायता देगी।

६ अगस्त, १६४६
इलाहाबाद

—श्री कृष्णदास

सूची

भूमिका

अनीश्वरवाद, मार्क्सवाद—वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्त और अमल का सहज, अविभाज्य हिस्सा है। अपने भौतिकवादी दर्शन का निर्माण करते समय मार्क्स और एंजिल्स को सब से पहिले धार्मिक दुनिया के विचारों से आई हुई धारणाओं का अच्छी तरह विश्लेषण करना पड़ा था। १८४४ में ही मार्क्स ने कहा था, **"धर्म की आलोचना ही तमाम आलोचनाओं का आरम्भ है।"**

यह आलोचना इतनी पूर्ण थी कि बाद के उनके अधिक विकसित दर्शन की अनीश्वरवादी रूपरेखा पर ज़ोर देने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं पड़ी, और उसे लोगों ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। यह बात बहुत से मार्क्सवादियों—जिनमें लेनिन भी शामिल हैं, के लिए सच है।

इसलिये मार्क्स, एंजिल्स और लेनिन जैसे हमारे महान आचार्यों की कृतियों में सर्वहारा-अनीश्वरवाद पर पूर्ण और नियमित वक्तव्य का न होना एक घटना मात्र नहीं है। **प्रत्यक्ष और स्पष्ट सत्यों का चर्चा करना सामान्य नहीं है।**

इसीसे इस बात का भी पता चलता है कि मज़दूर आन्दोलन में आमतौर से अनीश्वरवाद का क्यों इतना कम हाथ रहा है।

मज़दूर आन्दोलन के शुरू के दिनों में, मज़दूरों में से अधिकतर लोग धर्म से विमुख हो गये। १८७४ में ऐंजिल्स ने लिखा था, "योरोपीय मज़दूर पार्टियों में अनीश्वरवाद क़रीब-क़रीब एक स्वीकृत सत्य हो चुका है।"

१९०९ में लेनिन ने भी इसी प्रकार उन श्रेणीसजग "सामाजिक-प्रजातन्त्रवादियों" की बात कही थी जो कि "निश्चय ही अनीश्वरवादी थे।"

बहरहाल, बाद में मज़दूर आन्दोलन का सुदृढ़ अनाध्यात्मवाद विकृत होने लगा और सामाजिक प्रजातन्त्रवादी पार्टियों ने निम्न मध्यमश्रेणी का समर्थन प्राप्त करने के लिये धार्मिक धारणाओं के प्रति मुंह देखी बात करना शुरू किया।

जिस समय जर्मनी के सामाजिक प्रजातन्त्रवादियों (सोशल डेमाक्रेटों) ने अपने पहिले प्रोग्राम में (१८६९ का ईशनाख प्रोग्राम) राज्य से धर्म को और धर्म से शिक्षालयों को अलग करने की साफ़ और सही माँग की थी, उसी समय सोशलिस्ट लेबर पार्टी के गोथा प्रोग्राम (१८७५) में कहा गया था कि **"धर्म व्यक्तिगत मामला क़रार दिया जाता है।"**

इससे अवसरवादियों को पूरा अवसर मिल गया। इस प्रोग्राम की आलोचना करते हुये मार्क्स ने कहा था कि मज़दूरों की पार्टी को चाहिये कि "वह अपने को धर्म के प्रेत से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न करे।" क्रोधित होकर मार्क्स ने यह भी कहा था, "लेकिन वे पूँजी

वादी अवशेषों से अपना पिण्ड छुड़ाना भी तो उचित नहीं समझते।"

जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी ने अपने १८६१ के 'अरफ़र्ट' प्रोग्राम में भी यही विचार प्रगट किये थे। इस प्रोग्राम की छठवीं धारा यह है :—

"पुरोहितों और धर्म सम्बन्धी संस्थाओं को व्यक्तिगत संस्थायें समझना चाहिये।"

ऐंजिल्स ने पहिले ही यह सिद्धान्त रखा था कि "सभी धार्मिक संस्थाओं को राज्यद्वारा व्यक्तिगत संस्था माना जायेगा। उन्हें जनता के धन से कोई भी सहायता नहीं दी जायेगी, न वे जनता की शिक्षापर कोई असर डाल सकेंगे।"

सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी ने ऐंजिल्स की सिफ़ारिश को नज़रअन्दाज़ किया और उसे १६०१ की अक्तूबर तक पार्टी की सदस्यता से भी अलग रखा।

पार्टी द्वारा इस धारा के मान लिये जाने पर व्यवहार में इसका अर्थ यह लगाया गया कि धर्म एक व्यक्तिगत चीज़ है, यानी इस बात से पार्टी का कोई सम्बन्ध नहीं है कि उसका कोई सदस्य धार्मिक है अथवा नहीं।

यही चीज़ दूसरे देशों की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टियों के साथ भी हुई। फल-स्वरूप सोशल डेमोक्रेट कार्यकर्ताओं में यह बात पक्की होने लगी कि मार्क्सवाद धर्म-विरोधी नहीं है। इसके अलावा समाजवादी आन्दोलन में नाना प्रकार के ऐसे दल उठ

खड़े होने लगे जो कि धर्म के भीतर से ही समाजवादी सिद्धान्तों को ढूंढ लेने का दावा करते थे। अमेरिका के सोशलिस्ट पार्टी के नेता और इंगलैण्ड के स्वतन्त्र लेबर पार्टी के नेता ऐसे ही थे। इस प्रकार इन अवसरवादियों ने स्वयं समाजवाद के सिद्धान्तों को ऐसा बदल दिया की वे मज़दूरों में अन्धविश्वास फैलाने के साधन बनने लगे। लड़ाई के ज़माने से सोशल डेमोक्रेसी ने खुल कर और निश्चयरूप से मार्क्सवाद को छोड़ दिया है और उसने धार्मिक करवट ली है।

इसलिये ज़रूरी है कि धर्म की तरफ़ कम्युनिस्टों का रुख फिर से साफ़ किया जाय।

इस छोटी सी पुस्तक में, इसी विषय पर लेनिन के कुछ ऐसे लेख संग्रहीत हैं जिनसे यह रुख अच्छी तरह साफ़ हो जाता है। इन लेखों से पाठक को यह भी पता चल जायेगा कि धर्म के चक्कर में फँसने से मज़दूरों के बचने के सम्बन्ध में लेनिन के क्या विचार हैं।

प्रस्तुत संग्रह में धर्म सम्बन्धी प्रश्नों पर १६०२ और १६२२ के बीच के लेनिन के सबसे अधिक महत्व पूर्ण लेख और पत्र हैं।

हम यहाँ यह भी कह दें कि १६०८ में लिखे गये '**मेटीरियलिज़्म एण्ड इम्पीरियो क्रिटीसिज़्म*** नामी अपनी पुस्तक में लेनिन ने उस आदर्शवादी (विचारवादी) दर्शन की आलोचना की

---

*देखिये Lenin, Collected Works, Vo xiii और Vol. ii.

है जो कि धर्म का पृष्ठपोषण करता है। ऐसा करते समय लेनिन ने द्वन्द्वात्मवादी भौतिकवाद की पूरी विवेचना भी की है।

धर्म के प्रति मौजूदा मजदूर आन्दोलन का क्या रुख होना चाहिये, इस विषय पर जिन मार्क्सवादी आचार्यों ने जो कुछ लिखा है उनमें सब से अधिक पूर्ण लेनिन के वे विचार हैं जो इस पुस्तक में पहिले दो लेखों के रूप में आये हैं, (ये लेख क्रमशः १६०५ और १६०६ में लिखे गये थे)। दूसरे लेख की तरह तीसरे लेख का सम्बन्ध धर्म सम्बन्धो उस वादा-विवाद से है जो ज़ारिस्ट ड्यूमा में (१६०६) हुई थी। इस लेख में उदार पूंजीपतियों के प्रतिक्रया-वादी धर्मालयों के प्रति कमज़ोर और प्रतिक्रयावादी रुख की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। चौथा लेख १६०२ में कट्टर ईश्वरवादियों और अमीर श्रेणी के एक उदारमना व्यक्ति के झगड़े के अवसर पर लिखा गया था जिससे उस ईश्वरवादी व्यक्ति की इस मूल्यवान स्वीकृति पर कि "आखिरकार धर्म में धरा ही क्या है"—पर काफ़ी रोशनी पड़ती है।

'मार्क्सवादी झण्डे के नीचे' (Under the banner of Marxism)—१६२२—नामी वैज्ञानिक बोलशेविक पत्रिका के प्रथम अंक की भूमिका में लेनिन ने एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने पार्टी के भीतर और बाहर अनीश्वरवाद की ओर से अविराम संघर्ष की आवश्यकता पर ज़ोर डाला था। यह लेख हमारी पुस्तक में पाँचवें लेख के रूप में आया है। इसमें हमें तमाम

सुदृढ़ अनीश्वरवादियों और भौतिकवादियों के संयुक्त मोर्चे की माँग पर ज़ोर देने के लिये कहा गया है।

टालस्टाय पर लिखे गये लेख से (१९०८) टालस्टाय के सम्बन्ध में दूसरी पुस्तकें पढ़ने वाले पश्चिमी योरप के विद्वानों को धक्का लगेगा, क्योंकि इसमें टालस्टाय के बारे में कुछ ऐसी बातें कही गई हैं जिनका चर्चा अन्य मोटी से मोटी पुस्तकों में भी नहीं आया है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद की अपनी ज़मीन से चलकर लेनिन उन तमाम धार्मिक धारणाओं की तह में पहुँच जाते हैं जिनके ऊपर टालस्टायवाद का निर्माण हुआ है। साथ ही, वे किसानों के क्रान्तिकारी महत्व का भी विश्लेषण करते हैं।

इस संग्रह का एक मूल्यवान हिस्सा वे दो पत्र हैं जिनको लेनिन ने गोर्की को १९१३ में लिखा था। १९०५ की क्रान्ति के असफल होने के बाद लूनाचारस्की और गोर्कीके इर्द-गिर्द "ईश्वर खोजने वालों" का एक दल इकट्ठा होगया था। यह दल उस समय एक प्रकार के भावनामूलक समाजवाद का, जिसमें धार्मिक रुझान भी था, प्रचार किया करता था। ये पत्र इसी के विरुद्ध लिखे गये थे। चूंकि यह रुझान लेनिन के निकटतम मित्रों और साथियों में घर कर गया था, इसीलिये इसके विरुद्ध लेनिन ने और भी ज़्यादा तीखे तर्क पेश किये थे।

अन्त में, हमने १९२० में किशोर कम्युनिस्टों के आगे दिये गये लेनिन के उस महत्वपूर्ण भाषण के कुछ अंश दिये हैं जिसमें

कम्युनिस्ट आचार और धार्मिक आचार के अन्तर पर विचार किया गया है।

लेनिन के लेखों से नीचे लिखे चार सबसे अधिक महत्व-पूर्ण सिद्धान्तों की स्थापना होती है :—

(१) अनीश्वरवाद मार्क्सवाद का अविभाज्य हिस्सा है। इसलिये श्रेणी सजग मार्क्सवादी पार्टी को अनीश्वरवाद के पक्ष में प्रचार करना चाहिये।

(२) राज्य से धार्मिक संस्थाओं और धार्मिक संस्थाओं से शिक्षालयों के सम्बन्ध विच्छेद की माँग ज़रूर करनी चाहिये।

(३) सर्वहारा दल को अपने पक्ष में कर लेने का सबसे अच्छा साधन है उनके दैनिक आर्थिक और राजनीतिक हितों को पूरा कराने का प्रयत्न ! इसलिये अनीश्वरवाद के पक्ष में प्रचार उन्हीं हितों की रक्षा से सम्बन्धित होना चाहिये और तत्सम्बन्धी संघर्ष से ही उसका जन्म भी होना चाहिये।

(४) मेहनतकश जनता को धर्म से अन्यतम मुक्ति, सर्वहारा क्रान्ति के बाद, कम्युनिस्ट समाज की स्थापना पर ही मिल सकेगी। लेकिन इस कारण अनीश्वरवादी प्रचार को टालना नहीं चाहिये। इससे तो मजदूरों के श्रेणी संघर्ष की आम आवश्यकताओं के अन्तर्गत इसका महत्व और भी बढ़ जाता है।

धर्म के प्रति लेनिन का रुख़ रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के लिये बने हुये १९१९ के प्रोग्राम में अत्यन्त स्पष्ट रूप से दिखाई देता

है । "आम राजनैतिक प्रश्न" वाले स्तम्भ की १३ वीं धारा में यह लिखा है :—

"जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध है सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी–धार्मिक संस्थाओं और राज्य, तथा शिक्षालयों और धार्मिक संस्थाओं के सम्बन्ध विच्छेद की पहिले से मानी हुई बातें, यानी पूँजीवादी प्रजातन्त्रवाद के प्रोग्राम में कही गई वे बातें जिन्हें उन्होंने कभी कभी पूँजीवाद और धार्मिक प्रचार के विभिन्न बन्धनों की वजह से पूरा नहीं किया—ही तक अपने को सीमित नहीं रखती ।

"सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी अपने इस विश्वास के अनुसार चलती है कि केवल जनता के सजग और सावधानी से बने सामाजिक और आर्थिक प्रोग्राम को कार्य रूप में परिणत करने से 'धार्मिक धारणायें मुरझा जायेंगी ।' पार्टी शोषक श्रेणियों और धार्मिक प्रचार के संगठन के आपसी नाते को बिल्कुल तोड़ देने की कोशिश करती है । वह मज़दूर जनता को धार्मिक धारणाओं से सच्ची मुक्ति दिलाने में सहायता करती है और बड़े से बड़े स्तर पर वैज्ञानिक शिक्षा और धर्म विरोधी प्रचार का संगठन करती है । साथ ही, पार्टी समझती है कि यह भी आवश्यक है कि सतर्कता पूर्वक धर्म के मानने वालों को ऐसा धक्का पहुँचाने से बाज़ रहा जाय जिससे उनकी धर्मान्धता बढ़े ।"

इसी प्रकार कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय ने अपनी छठवीं विश्व काँग्रेस में यह माना है कि:

"जनता का अफ़ीम-धर्म के विरुद्ध संघर्ष का अत्यन्त महत्वपूर्ण

स्थान सांस्कृतिक क्रान्ति के क्षेत्र में है। यह संघर्ष अनवरत और नियमित ढंग से चलना चाहिये। सर्वहारा शक्ति को चाहिये कि वह धार्मिक संस्थाओं को किसी प्रकार की भी सहायता न दे। राज्य द्वारा संचालित शिक्षा प्रणाली और शिक्षादान के ऊपर से धार्मिक संस्थाओं का हर तरह का असर खत्म कर दे। उसे चाहिये कि धर्मोपदेश को और धार्मिक संस्थाओं के प्रतिक्रिया वादी कार्यों को बेरहमी के साथ नष्ट करदे। सर्वहाराशक्ति आत्म स्वतन्त्रता को मानती है, लेकिन साथ ही वह धर्म विरोधी प्रचार में भी अपने सारे साधनों को इस्तेमाल करती है। वह सुदृढ़ धर्मालयों के असामान्य स्थिति को खत्म करती है और तमाम शिक्षा प्रणाली का सुधार संसार की भौतिकवादी धारणा के आधार पर करती है।"*

---

*कम्युनिस्ट इन्टर नेशनल का प्रोग्राम (Modern Books Ltd. London 1929) The dynamic laws of Capitalism and the Epoch of Industrial Capital. नामी भाग में प्रोग्राम—"प्रकृतिक विज्ञान की महान सफलताओं के होते हुये भी पूंजीवादी वर्ग की सामञ्जस्यपूर्ण, वैज्ञानिक दर्शन के निर्माण की अयोग्यताओं, आदर्श वाद (विचारवाद) के प्रादुर्भाव, रहस्यवादी और धार्मिक मिथ्या विश्वासों के उदय" का विश्लेषण करता है।................प्रोग्राम की भूमिका साफ़ साफ़ एलान करती है कि मार्क्स और ऐंजिल्स के द्वन्द्वात्मवादी भौतिकवाद की वकालत करते हुए, वास्तविकता को पूरी तरह समझने वाले क्रान्तिकारी ढंग की तरह इस्तेमाल करते हुये, जिससे कि इस वास्तविकता का क्रान्तिकारी रूपपरिवर्तन हो सके, कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय हर प्रकार के पूंजीवादी दर्शन के विरुद्ध सक्रिय संघर्ष चलाता है.............!"

इस भूमिका के आरम्भ में हमने कहा था कि अनीश्वरवाद के बग़ैर मार्क्सवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। यहाँ हम यह जोड़ दें कि मार्क्सवाद के बग़ैर अनीश्वरवाद अपूर्ण और असम्बद्ध है। इस तर्क भी पुष्टि पूंजीवादी स्वतन्त्र विचारकों के आन्दोलन की अवनति से होती है। जहाँ कहीं भी वैज्ञानिक भौतिकवाद ऐतिहासिक भौतिकवाद-मार्क्सवाद में विकसित होने से रह जाता है वहीं उसका अन्त विचारवाद (आदर्शवाद) और अन्धविश्वास में हो जाता है।

—:०:—

१

समाजवाद और धर्म

वर्तमान समाज अपने बहुत छोटे से अंश ज़मीदर और पूँजीपति श्रेणी द्वारा मज़दूरों की विशाल जनता के शोषण पर ही पूर्णतया अवलम्बित है। यह समाज ग़ुलाम समाज है क्यों कि "स्वतन्त्र मज़दूर" जो पूँजी के बढ़ाने के लिये जीवन भर काम करते हैं, जिनको जीवनयापन के साधनों के उसी अंश पर 'अधिकार' है जो पूँजीपतियों के लिये लाभ पैदा करते समय ग़ुलाम की तरह उनको जीवित रखने के लिये आवश्यक है। या, थोड़े में, पूँजी-वादी ग़ुलामी प्राप्त करने और उसे क़ायम रखने के लिये काफ़ी है।

मज़दूरों के ऊपर इस आर्थिक ज़ुल्म से नाना रूप के राजनैतिक ज़ुल्मों और सामाजिक पतन का जन्म होता है। वह जनता के आध्यात्मिक और नैतिक जीवन को अधिक असंस्कृत और रूखा बना देता है। मज़दूरों को अपनी आर्थिक मुक्ति के लिये कम या ज़्यादा राजनीतिक स्वतन्त्रता तो मिल सकती है लेकिन जब तक पूँजी का दौर दौरा है तब तक अधिक से अधिक स्वतन्त्रता भी उनको ग़रीबी, बेकारी और ज़ुल्म से मुक्ति नहीं दिला सकती।

धर्म, आध्यात्मिक ज़ुल्मों का ही एक रूप है। दूसरों के लिये लगातार मेहनत करने से, ग़रीबी और बेबसी से, कुचली हुई जनता पर हर जगह यह धर्म अपना असर दिखलाता है। जिस

तरह प्रकृति से संघर्ष करने वाले हब्शी के अन्दर बेबसी की वजह से देवताओं, राक्षसों, जादू-टोना आदि पर विश्वास जमने लगता है, उसी प्रकार शोषकों के विरुद्ध संघर्ष में तमाम शोषितों की बेबसी के कारण ही, मृत्यु के बाद अच्छे जीवन पर विश्वास पैदा होता है।

जो लोग जीवन भर परिश्रम करने के बावजूद भी ग़रीब रहते हैं उन्हें धर्म इस जीवन में ईश्वराधीन रहने और संतोष रखनेका उपदेश देता है; और स्वर्ग में फल मिलने का आश्वासन देता है। जहाँ तक उन लोगों का सम्बन्ध है जो दूसरों के श्रम पर जीवित रहते हैं, उन्हें धर्म "दानी" बनना सिखाता है। इस प्रकार वह शोषण को औचित्य प्रदान करता है, या यों कहिये कि वह इस प्रकार स्वर्ग के लिये सस्ता टिकट दे देता है। "धर्म समाज के लिये अफ़ीम है"*। धर्म एक प्रकार का आध्यात्मिक नशा है जिसमें पूंजी के ग़ुलाम अपनी मानवता को भुला देते हैं और स्वस्थ मानव जीवन की अपनी इच्छा को कुण्ठित कर लेते हैं।

लेकिन एक ग़ुलाम जो अपनी ग़ुलामी से सचेत हो चुका है और जो अपनी मुक्ति के लिये लड़ने को बढ़ चुका है, उसकी

---

*मार्क्स ने इस वाक्य को हेगिल के Philosophy of Law की आलोचना में इस्तेमाल किया था। अक्तूबर क्रान्ति के बाद मास्को के पहिले सिटी हाल की दीवार पर 'आइबीरियन वर्जिन मदर' की प्रतिमा के सामने इसे अंकित किया गया था। प्रतिमा अब हटा दी गई है।

अपनी गुलामी खत्म हो चुकी है। आज का श्रेणी सजग मजदूर जो बड़ी फैक्टरी के वातावरण में पल चुका है और जिसे नागरिक जीवन की रोशनी मिल चुकी है, वह धार्मिक धारणाओं को घृणा के साथ अस्वीकार कर देता है। वह स्वर्ग को पुरोहितों और पूँजीवादी पाखण्डियों के लिये छोड़ देता है। वह अपने इस संसार के अच्छे जीवन के लिये लड़ता है।

आज का सर्वहारा अपने को उस समाजवादी दल में रखता है जो विज्ञान की सहायता से धर्म के कुहासे को छाँट रहा है और मजदूरों को इस धरती के अच्छे जीवन के लिये संघर्ष में जुटा कर मृत्यु के बाद के जीवन के विश्वास से मुक्ति दिला रहा है।

"धर्म को निश्चय ही व्यक्तिगत चीज मानना चाहिये"—इन शब्दों से धर्म के प्रति समाजवादियों के रुख का आमतौर से पता चलता है;लेकिन हमें गलतफहमी से बचने के लिये इन शब्दों का ठीक अर्थ समझ लेना चाहिये।

हमारी माँग है कि जहाँ तक राज्य का सम्बन्ध है धर्म को व्यक्तिगत बात मानना चाहिये। परन्तु किसी भी हालत में पार्टी के भीतर इसे हम व्यक्तिगत मामला नहीं मान सकते।

राज्य को अपना सम्बन्ध धर्म से नहीं रखना चाहिये। धार्मिक संस्थाओं को राज्य से नहीं बाँधना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी धर्म को मानने अथवा न मानने की अथवा अनीश्वरवादी होने (जैसा की प्रत्येक समाज-वादी है) की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। धार्मिक कारणों से

नागरिकों के अधिकारों में पक्षपात नहीं होना चाहिये। सरकारी काग़ज़ों से नागरिकों का धर्म सम्बन्धी ब्यौरा बिल्कुल उड़ा देना चाहिये।*

स्थापित धर्मालय को किसी भी प्रकार की सहायता न दी जानी चाहिये, न किसी भी गिर्जा अथवा धार्मिक संस्थाओं को सरकारी ख़ज़ाने से मदद मिलनी चाहिये। इन्हें राज्य से अलग होना पड़ेगा और एक मत के मानने वाले नागरिकों की स्वयं निर्वाचित संस्था बननी पड़ेगी।

केवल इन मांगों की पूर्ति ही उस लज्जापूर्ण और अभिशप्त अतीत का अन्त कर सकेगी जब धर्मालय राज्य की सामन्तवादी निर्भरता के सहारे रहते थे और जब रूसी नागरिक स्थापित गिरजा की सामन्तवादी निर्भरता में रहा करते थे, जब कि लज्जा-जनक मध्यकालीन नियम (जो कि अब भी हमारी व्यवस्था की पोथियों में और क़ानूनी धाराओं में लिखे हुये हैं) ज़ोरों पर चल रहे थे। इन नियमों ने किसी धर्म विशेष में विश्वास अथवा अविश्वास के लिये सज़ायें निश्चित कर रखी थीं। इन्होंने व्यक्ति की आत्मा को नष्ट कर दिया था और सरकारी नौकरियों और करों का बँटवारा इस या उस धर्म के नशे में चूर व्यक्ति के बँट-

*ज़ारिस्ट रूस में जिस धर्म को जो कोई मानता था उसे उसके सरकारी कागज़ों, पास पोर्टों, शादी ब्याह के सार्टीफ़िकटों आदि के ब्यौरे में दर्ज कर दिया जाता था।

वारे से सम्बन्धित कर दिया था। राज्य और धर्म का पूर्ण विग्रह—यही आज के समाजवादी सर्वहारा की माँग होनी चाहिये।

रूसी-क्रान्ति को चाहिये कि राजनैतिक स्वतन्त्रता के एक ज़रूरी किश्त की तरह वह इस माँग को अमल में लाये। सच तो यह है कि ऐसा करने के लिये रूसी क्रान्ति के हाथ एक अच्छा मौक़ा लगा है, क्योंकि सामन्तवादी एकतन्त्रवाद की घृणित राजनैतिक दफ़्तरशाही से ख़ुद पुजारियों की श्रेणी में असंतोष और ग़ुस्सा भर गया है। कट्टर रूसी पुजारी दबे और अनजान होते हुये भी मध्यकालीन रूसी ढाँचे के टूटने की आवाज़ से काफ़ी जाग चुके हैं। वे आज़ादी की माँग स्वीकार करने लगे हैं। अफ़्सरशाही के ज़ुल्मों के विरोध में ये पुजारी साथ देते हैं और 'ईश्वर के सेवकों' के ऊपर लादे हुये पुलिस की निगरानी के खिलाफ़ विद्रोह करते हैं।

समाजवादियों को इस आन्दोलन का समर्थन ज़रूर करना चाहिये। ईमानदार तथा सच्चे पुजारियों की इन माँगों को अन्तिम सीमा तक जरूर पहुँचाना चाहिये। जब वे स्वतन्त्रता की बातें करते हैं और माँग करते हैं कि पुलिस और धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं रहना चाहिये, तो समाजवादियों को उनकी माँगों का भरोसा करना चाहिये। हमें निश्चय ही उनसे कहना चाहिये कि "अगर आप सच्चे हैं तो आपको गिरजा के राज्य से अलग होने की माँग का समर्थन करना चाहिये। आप को चर्च से स्कूल के अलग होने

की माँग पर ज़ोर देना चाहिये और इस पर भी ज़ोर देना चाहिये कि धर्म बिना किसी शर्त के व्यक्तिगत मामला मान लिया जाय। अगर आप आज़ादी की इन न्याय संगत माँगों को नहीं मानते तो इसका अर्थ यही है कि आप अब भी निगरानी वाली परम्परा के ग़ुलाम हैं; इसका अर्थ यह होगा कि आप अब भी सरकारी पदों और उससे मिले हुये कारों के लिये लालायित हैं। इसका अर्थ यह होगा कि आपको अपने अस्त्रों की आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास नहीं है और आप अब भी सरकार से घूस लेना चाहते हैं। अगर ऐसा है तो श्रेणी सजग रूसी मज़दूर आपके ख़िलाफ़ निर्मम युद्ध का एलान करेगा।"

बहरहाल, सर्वहारा समाजवादी पार्टी के लिये, धर्म व्यक्तिगत मामला नहीं है। हमारी पार्टी, मज़दूरों की मुक्ति के लिये लड़ने वाले, श्रेणी सजग, प्रगतिशील लड़ाकों का दल है। ऐसा दल धार्मिक अन्धविश्वासों के रूप में अज्ञान और अन्धकार के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। न उसे रहना चाहिये। हम राज्य से गिरजा के पूर्ण विग्रह की माँग करते हैं। जिससे धर्म का अँधेरा शुद्ध बुद्धिगत अस्त्रों और केवल बुद्धिगत अस्त्रों—हमारे अख़बारों और ज़बानी अनुरोधों—से हट जाय। हमारी संस्था—रूसी सामाजिक प्रजातन्त्रिक मज़दूर दल-* के मन्तव्यों में से एक

*उस पार्टी का मूल नाम जिसके वामपक्षी बोलशेविक थे (१६०३)। अन्ततोगत्वा आपस का भेद फूट में बदल गया और बोलशेविक आगे बढ़कर सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी बन गये।

मज़दूर को धर्म के धोखे से बचाने के लिये लड़ना भी है। हमारे लिये विचारधारा सम्बन्धी संघर्ष व्यक्तिगत मामला नहीं है; बल्कि यह एक ऐसा मामला है जिसका सम्बन्ध पूरी पार्टी से है, पूरे सर्वहारा वर्ग से है।

अगर ऐसा है तो हम अपने प्रोग्राम में यह एलान क्यों नहीं करते कि हम अनीश्वरवादी हैं? हम ईसाइयों और ईश्वर वादियों को अपनी पार्टी में आने से क्यों नहीं रोकते?

इस प्रश्न का उत्तर धर्म के प्रति पूँजीवादी प्रजातान्त्रिक रुख और समाजवादी प्रजातान्त्रिक रुख में बहुत बड़े और महत्वपूर्ण भेद को सामने ला देता है।

हमारा प्रोग्राम बिल्कुल वैज्ञानिक या और स्पष्ट कहें तो भौतिकवादी दर्शन के आधार पर खड़ा है। इसलिये अपने प्रोग्राम को समझाते हुये हमें धर्म की ऐतिहासिक और आर्थिक जड़ों को अवश्य बताना चाहिये।

इसीलिये हमारे प्रोग्राम में अनीश्वरवाद का प्रचार भी आवश्यक रूप से शामिल किया गया है। वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन जिसकी अब तक सख्ती के साथ मनाही थी और जो एक-तन्त्रवादी सामन्तवादी सरकार द्वारा सज़ा की चीज़ मानी गई थी, अब हमारी पार्टी के कामों का एक हिस्सा बनना चाहिये। शायद अब हमें ऐंजिल्स की वह सम्मति माननी पड़ेगी जो उन्होंने जर्मन सोशलिस्टों को दी थी; यानी वे अठा-

२०वीं सदी के प्रगतिशील साहित्य को अनूदित करें और उसे जनता के भीतर फैलावें।

लेकिन किसी भी हालत में हमें अपने धर्म के प्रश्न को हवाई ढंग से सोच कर—आदर्शवादी (विचारवादी) ढंग से सोचकर, उसे श्रेणी संघर्ष से बिल्कुल अलग "तर्क" की बात समझकर (जैसा रुप उसे उग्र पूँजीवादी-प्रजातन्त्रवादियों ने अक्सर दिया है), बहाव में छोड़ नहीं देना चाहिये!

ऐसे समाज के अन्दर, जो मज़दूर श्रेणी पर असीम अत्याचार और उसके पतन पर क़ायम है, यह सोचना कि केवल उपदेश से ही धार्मिक धारणाओं को नष्ट किया जा सकता है—निरर्थक है।

इस बात से आँखें बन्द कर लेना, कि मनुष्य पर धार्मिक अत्याचार समाज के आर्थिक अत्याचार का नतीजा अथवा छाया है, पूँजावादी संकीर्णता होगी। जब तक सर्वहारा पूँजीवाद की भयानक शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष के द्वारा स्वयं अपने मार्ग को पहिचान न ले, तब तक कोई भी पुस्तक अथवा उपदेश उसे मार्ग नहीं दिखा सकते।

पीड़ित श्रेणी के लिये, इस धरा पर स्वर्ग का निर्माण करने के लिये, सत्यमेव क्रान्तिकारी संघर्ष के अन्दर से निकली हुई एकता, सर्वहारा विचारधारा की उस एकता से अधिक महत्वपूर्ण है जो आसमान में स्वर्ग के सपने देखा करती है।

इसीलिये हम अपने प्रोग्राम में यह एलान नहीं करते, न हमें यह एलान करना ही चाहिये कि हम "अनीश्वरवादी हैं।" इसलिये हम पुरानी धारणाओं के अवशेषों से चिपटे रहनेवाले सर्वहारा को अपने अधिक से अधिक नजदीक आने से नहीं रोकते, न हमें उन्हें रोकना ही चाहिये। हम हमेशा वैज्ञानिक दर्शन का प्रचार करेंगे। हमें ईसाइयों की अनर्गलता के विरुद्ध लड़ना है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि धर्म के प्रश्न को सब प्रश्नों के आगे उस स्थान पर थोप दिया जाय जहाँ उसे नहीं होना चाहिये। उन तत्त्वविहीन सपनों और विचारों के लिये, जिनका सारा राजनैतिक महत्व तेजी से समाप्त होता जा रहा है, और जो आर्थिक निर्माण के स्वाभाविक विकास के कारण धीरे-धीरे कूड़े कर्कट में फेंक दिये जा रहे हैं, हमें सच्चे क्रान्तिकारी, राजनैतिक और आर्थिक संघर्षों में शामिल शक्तियों को तोड़ कर बिखरा नहीं देना है।

अन्य देशों की तरह यहाँ भी प्रतिक्रियावादी पूँजीवाद, मेहनत करके, धार्मिक विरोधों को उभारता है, जिससे जनता का ध्यान, उन सचमुच महत्वपूर्ण और मूलभूत आर्थिक और राजनैतिक प्रश्नों की ओर से हट जाय, जिनका निर्णय रूस के सर्वहारा, क्रान्तिकारी संघर्ष को अमली रूप देने में लगकर, कर रहे हैं।

सर्वहारा शक्तियों में फूट डालने की यह प्रतिक्रयावादी नीति

का जो आज वशेषयता "ब्लैक हण्ड्रेड के पोग्रोम*" के रूप में प्रकट हो रही है, अधिक बारीकी के साथ सामने आसकती है। हम इसका विरोध करेंगे और हर हालत में शान्तिपूर्वक तथा स्थिरता से, सब्र के साथ उस सर्वहारा एकता और वैज्ञानिक दर्शन की हिमायत करते जायेंगे जो कम महत्वपूर्ण विरोधों को उभारने से अपने को बचाये रखेगा।

क्रान्तिकारी सर्वहारा इसका ध्यान रखेगा कि जहाँ तक राज्य का सम्बन्ध है धर्म सचमुच व्यक्ति मामला बन जाता है; और तब एक ऐसे शासन काल में जिसमें मध्य युगीन सड़ाँध साफ होगई रहेगी, सर्वहारा आर्थिक गुलामी, जो कि मनुष्य मात्र को धर्म के धोखे में रखने की मूल कुञ्जी है—को समाप्त करने के लिये बड़े स्तर पर खुला संघर्ष छेड़ेगा।

नोवायाज़िन, नं० २८

१६ दिसम्बर, १६०५

हस्ता० लेनिन

---

*तथा कथित 'लीग आफ़ रशियन पीपुल' के वे सदस्य जिन्हें ज़ार की पुलिस ने संगठित किया था और जिन्हें उच्चवर्ग ने संरक्षण प्रदान किया था। मुख्यतः इस दल में गुण्डे और लम्पट सदस्य हुआ करते थे। क्रान्तिकारियों, विद्यार्थियों, यहूदियों और राष्ट्रीय-अल्पमत वालों के विरुद्ध पुलिस के ज़ुल्मों में ये लोग मदद किया करते थे। यहूदियों पर इन्हीं लोगों ने नृशंस अत्याचार किये थे।

२

मज़दूरों के प्रति पार्टी का रुख़

सामाजिक प्रजातन्त्रवाद का सारा दर्शन वैज्ञानिक समाजवाद अर्थात् मार्क्सवाद पर आधारित है। जैसा कि मार्क्स और ऐंजिल्स ने बार बार एलान किया है मार्क्सवाद का दार्शनिक आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, फ्रांस की अठारहवीं सदी के भौतिकवाद की ऐतिहासिक परम्पराओं और जर्मनी में फेवरबाख* के (उन्नीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध) भौतिकवाद को जो परम अनीश्वरवादी और तमाम धर्मों का निश्चय ही विरोधी है, पूर्णतया स्वीकार करता है।

---

*लुडविग फ़ेवरबाख़ (१८४०—१८७२) एक जर्मन दार्शनिक-जो पहिले हेगिल का अनुयायी था और बाद में भौतिकवादी हो गया था। "ईसाई धर्म का सार" नामी अपनी पुस्तक में उसने यह साबित करने की कोशिश की है कि मनुष्य के ऊपर धर्म का प्रभाव ख़त्म होने को आगया है। उसने तर्क किया था कि मनुष्य का सबसे बड़ा आदर्श उसी में और इसी पृथ्वी पर के जीवन में अन्तर्हित है। इसके बाहर कोई दूसरा जीवन नहीं है। उसके विचार से ईश्वर में मनुष्य अपने व्यक्तित्व का ही आदर्श रूप देखता है।

यहाँ हमें यह याद रखना चाहिये कि ऐंजिल्स का "डुअरिगं-विरोध", जिसकी पाण्डुलिपि मार्क्सने पढ़ी थी, भौतिकवादी और अनीश्वरवादी डुअरिगं को समान रूप से भौतिकवादी न होने और धर्म तथा धार्मिक दर्शन के लिये अवसर छोड़ देने का दोषी ठहराता है।

हमें यह याद रखना चाहिये कि ऐंजिल्स ने लुडविग फ़ेवरबाख़ के ऊपर लिखे गये अपने लेख में फ़ेवरबाख़ को इस बात के लिये फटकारा है कि वह धर्म को नष्ट करने के लिये धर्म के विरुद्ध नहीं लड़ता, बल्कि उसे फिर से जीवित करने, एक नया ऊँचे तरह का धर्म स्थापित करने के लिये लड़ता है।

मार्क्स ने कहा, "धर्म जनता का अफ़ीम है।" और, जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध है यह वाक्य मार्क्सवाद के पूरे दर्शन का मूल आधार है। मार्क्सवाद ने हमेशा तमाम मौजूदा दर्शनों और धर्मालयों तथा हर प्रकार के धार्मिक संस्थाओं को उस पूँजीवादी प्रतिक्रिया का अस्त्र, जिसका ध्येय श्रमिक वर्ग को बेवकूफ़ बना कर उसके शोषण को उचित ठहराना है—माना है।

बहरहाल, इसी के साथ ऐंजिल्स ने बार-बार उन लोगों की भर्त्सना की है जिन्होंने सामाजिक प्रजातन्त्रवाद से "अधिकक्रान्तिकारी" होने की इच्छा के कारण मजदूरों की पार्टी के प्रोग्राम में अनीश्वरवाद की स्पष्ट स्वीकृति को भी शामिल करना चाहा था, जिन्होंने "धर्म के विरुद्ध युद्ध का एलान" करने का प्रयत्न किया था।

१८७८ में, कम्यून के उन शरणार्थियों—ब्लैंकिस्टों के जो कि उस समय लन्दन में प्रवास कर रहे थे—एलान की आलोचना करते हुये ऐंजिल्स ने उनके धर्म के विरुद्ध युद्ध के शोरगुल भरे घोषणा को प्रलाप बतलाया था। ऐंजिल्स ने ब्लैंकिस्टों की इस बात के लिये भर्त्सना की कि वह यह समझने में असफल रहे कि केवल वही जनात्मक मज़दूर संघर्ष, जो कि सर्वहारा के बहुमत को सजग और क्रान्तिकारी सामाजिक अमल के सभी रूपों के साथ अपने में शामिल करता है, पीड़ित जनता को धर्म के जुये से मुक्ति दिलायेगा। मज़दूरों के दल का राजनैतिक ध्येय के रूप में धर्म के खिलाफ़ युद्ध का एलान करना केवल अराजकतावादी ढंग हैं।

और, १८७७ में "डुअरिगं विरोध" में ऐंजिल्स ने आदर्शवाद और धर्म के प्रति थोड़ी सी रियायत करने के लिये भी दार्शनिक डुअरिगं पर आक्रमण करते हुये उसके इस मिथ्या-क्रान्तिकारी धारणा की कि समाजवादी समाज में धर्म का निपेध रहेगा—कम जोरदार शब्दों में भर्त्सना नहीं की।

ऐंजिल्स कहते हैं कि धर्म के ऊपर इस प्रकार के आक्रमण का एलान करने का अर्थ है "बिस्मार्क से भी अधिक बिस्मार्कवादी होना", अर्थात् पुरोहितवाद के विरुद्ध बिस्मार्कवादी संघर्ष की मूर्खता को दोहराना (प्रसिद्ध "संस्कृति के लिये संघर्ष" अर्थात् वह संघर्ष जिसे १८७० में बिस्मार्क ने जर्मन-कैथोलिक पार्टी-केन्द्र और उसके साथ के कैथोलिकवादी राजनैतिक अत्याचार के विरुद्ध

छोड़ा था।) इस संघर्ष से बिस्मार्क ने कैथोलिकों के लड़ाकू पुरोहितवाद को और भी मजबूत कर दिया और सच्ची संस्कृति के काम को धक्का पहुँचाया; क्योंकि उसने राजनैतिक विभेदों के स्थान पर धार्मिक विभेदों को सामने ला रखा और इस प्रकार मजदूर श्रेणी और प्रजातन्त्र का ध्यान श्रेणीगत और क्रान्तिकारी संघर्ष के आवश्यक कामों से अलग हटा कर अत्यन्त छिछले और मिथ्या पूँजीवादी पुरोहित-विरोध में लगा दिया।

ऐंजिल्स ने होने वाले अति-क्रान्तिकारी डुअरिंग को बिस्मार्क की मूर्खता को दूसरे रूप में दोहराने का प्रस्ताव करने का दोषी ठहराया। उन्होंने माँग की कि मजदूरों की पार्टी को, सर्वहारा को संगठित और शिक्षित करने के उन कामों में धैर्य के साथ लग जाना चाहिये जिससे धर्म स्वयं खत्म हो जाय। उन्हें धर्म के विरुद्ध राजनैतिक युद्ध के किसी आपत्तिजनक कार्य में खींचे जाने से इनकार कर देना चाहिये।

जर्मन सामाजिक प्रजातन्त्र ने इस दृष्टिकोण को पूरी तरह हजम कर लिया। मिसाल के लिये उन्होंने जेसुइट्स को स्वतन्त्रता देने, उन्हें जर्मनी में वापस आने देने की और किसी धर्म के विरुद्ध संघर्ष को पुलिस के तरीके से बन्द कर देने के खिलाफ़ वकालत की। अरफ़र्ट प्रोग्राम (१८९१) के प्रसिद्ध वाक्य "धर्म व्यक्तिगत मामला है" ने सामाजिक प्रजातन्त्रवाद की उस राजनीतिक नीति को दृढ़ कर दिया।

बहरहाल, यह नीति आज-कल रोजमर्रा की बात बनकर रह

गई है। इसकी वजह से मार्क्सवाद का एक नया विरूप—वह भी दूसरी दशा में—अवसरवाद की दिशा में बनता जा रहा है।

अरफ़र्ट प्रोग्राम की यह बात इस अर्थ में समझी जाने लगी है कि हम सामाजिक प्रजतन्त्रवादी 'अपने' लिये धर्म को व्यक्तिगत मामला समझने लगे हैं। इस अवसरवादी दृष्टिकोण के विरुद्ध सीधे वादाविवाद में पड़ने के बजाय, १८९० में, एँजिल्स ने इसका ज़ोरदार विरोध करना आवश्यक समझा, वादाविवाद के ढंग से नहीं बल्कि एक निश्चित ढंग से। यानी, एँजिल्स ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने इस बात पर साफ़ साफ़ जोर दिया कि सामाजिक प्रजातन्त्रवादी,धर्म को, जहाँ तक सरकार का सम्बन्ध है, व्यक्तिगत मामला समझते हैं; लेकिन जहाँ तक अपना सम्बन्ध है या मज़दूरों की पार्टी का सम्बन्ध है वे धर्म को ऐसा नहीं समझते।*

धर्म के प्रश्न पर मार्क्स और एँजिल्स के रुख़ का यही इतिहास है। जो लोग मार्क्सवाद को ऊपर से ही देखते हैं, जो उसे न समझते हैं, न समझ सकते हैं, उनके लिये यह इतिहास मार्क्सवाद की निरर्थक असंगतियों और संशयों का एक संग्रह है; यह

---

*"फ्रांस में गृह युद्ध" नामी मार्क्स की पुस्तक की भूमिका में एँजिल्स लिखते है "कम्यून ने उन सुधारों को लागू किया, जिन्हें रिपब्लिकन पूँजीवादी कायरतावश नहीं कर सकते थे, लेकिन जिसकी वजह से काम करने के लिये मज़दूरों को आवश्यक बुनियाद मिली; जैसे यह सिद्धान्त कि जहाँ तक राज्य का सम्बन्ध है धर्म एक व्यक्तिगत मामला है।

निरन्तर अनीश्वरवाद और धर्म के प्रति की गई रियायतों का गड़बड़झाला है; यह ईश्वर के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्ष और धार्मिक कार्यकर्ताओं के डर से घबरा कर अपने को बहलाने की कायरतापूर्ण इच्छा के बीच "सिद्धान्त विहीन" असमंजस है। अराजकतावादी जुमलेबाजों का साहित्य मार्क्सवाद के ऊपर हमला करने वाले इसी प्रकार के विचारों से भरा पूरा है।

लेकिन ऐसा कोई भी व्यक्ति जो मार्क्सवाद को थोड़ी सी गम्भीरता पूर्वक समझता है; जो अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक प्रजा-तन्त्रवाद के दार्शनिक सिद्धान्तों और अनुभवों पर विचार कर सकता है, फ़ौरन यह समझ लेगा कि धर्म सम्बन्धी मार्क्सवादी नीति समान और सम्बद्ध है और यह कि मार्क्स और ऐंजिल्स ने उस पर पूरा विचार कर लिया था।

यह स्पष्ट है कि जिसे अवसरवादी और अनजान लोग संशय कहते हैं वह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का अनिवारणीय नतीजा है। यह सोचना भारी ग़लती होगी कि धर्म के सम्बन्ध में मार्क्सवाद के अन्दर ऊपरी "सुधार" को तथा कथित "नीति" के ख्याल से बताकर या धार्मिक कार्य कर्ताओं को डरा न देने की इच्छा बताकर टाला जा सकता है। इसके उल्टे, इस प्रश्न पर मार्क्सवाद की राजनैतिक विचारधारा उसके धार्मिक सिद्धान्तों से अविभाज्य रूप में बँधी हुई है।

मार्क्सवाद भौतिकवाद है। इसलिये वह धर्म का उसी तरह निर्मम विरोधी है जिस तरह अठारहवीं सदी के विश्वकोष

लिखने वालों का अथवा फ़ेवरबाख का भौतिकवाद है। यह निस्सन्देह है कि मार्क्स और एंजिल्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद विश्वकोष वालों* अथवा फ़ेवरबाख के भौतिकवाद से आगे बढ़ जाता है। वह भौतिकवादी दर्शन को इतिहास के क्षेत्र में और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में लागू करता है।

हमें धर्म से अवश्य लड़ना चाहिये। यही पूरे भौतिकवाद का और फलतः मार्क्सवाद का क. ख. ग. है। लेकिन मार्क्सवाद ऐसा भौतिकवाद नहीं है जो क. ख. ग. पर रुक जाय। मार्क्सवाद आगे बढ़ता है। वह कहता है हमें धर्म से लड़ने के लायक़ बनना होगा। और, ऐसा करने के लिये हमें भौतिकवादी दृष्टिकोण से बताना होगा कि मिथ्या विश्वास और धर्म क्यों जनता में प्रचलित हैं।

धर्म के विरुद्ध संघर्ष को हवाई-विचारधारा सम्बन्धी उपदेशों तक ही सीमित नहीं कर देना है। इस आन्दोलन को ठोस, अमली श्रेणी आन्दोलन के साथ बाँधना होगा। इसका उद्देश्य होगा धर्म के सामाजिक जड़ों को उखाड़ फेंकना।

शहरों के सर्वहारा के पिछड़े हुए लोगों में, सर्वहारा के बहुत बड़े हिस्से में और किसान जनता में धर्म का असर अब भी क्यों बाक़ी है ? प्रगतिशील पूँजीवादी उग्रतावादी या पूँजीवादी

---

*विशाल फ्रांसीसी शब्दकोष के संकलन-कर्ता। इस विश्वकोष का सम्पादन दिदरो और द' लम्बर्त ने १७५१-७२ में किया था। यह वैज्ञानिक पुस्तक भौतिकवादी दृष्टिकोण से लिखी गई थी।

भौतिकवादी कहता है, "जनता की ना समझी के कारण।" इसलिये "धर्म का नाश हो", अनीश्वरवाद जिन्दाबाद, अनीश्वरवादी विचारों का प्रचार ही हमारा मुख्य काम है।"

मार्क्सवादी कहता है "न, यह सच नहीं है। यह तो साधारण पूँजीवादी संस्कृति और उसके उद्देश्य की संकीर्णता की बनावटी सीमाओं को बताती है। यह छिछली और धर्म की जड़ों की भौतिकवादी नहीं आदर्शवादी ढंग से व्याख्या करती है।"

वर्तमान पूँजीवादी देशों में धर्म की भित्ति मूलतः सामाजिक है। वर्तमान धर्म की जड़ें श्रमिक जनता के ऊपर सामाजिक अत्याचार में, पूँजीवादी अन्धी शक्तियों के सामने उनकी खुली हुई पूर्ण बेबसी में, जिनकी वजह से हर दिन, हर घड़ी साधारण मज़दूरी पेशा लोगों को युद्ध अथवा भूडोल जैसी विशेष घटनाओं से कई हज़ार गुना भयंकर कष्ट और पीड़ा होती है, गड़ी हुई है। "डर ने देवताओं को जन्म दिया"। पूँजीवादी अन्धी शक्तियों का डर ही—अन्धी शक्तियाँ इसलिये कि उनकी करनी जनता पहले से नहीं देख सकती—एक ऐसी शक्तियाँ जो कि ज़िन्दगी में हर क़दम पर मज़दूरों और छोटे-मोटे व्यापारियों को उस "आकस्मिक", "अप्रत्याशित" "अलक्षित" बरबादी और नाश से डराया करती है जिनके फलस्वरूप भिखमंगी, दरिद्रता, वेश्यागमिता और भुखमरी का प्रकोप होता है—मौजूदा धर्म का वह मूलस्रोत है जिसे सबसे पहले और सबसे आगे भौतिकवादियों को समझ लेना चाहिये, अगर हमेशा के लिये भौतिकवाद के प्रारंभिक

पाठशाला से वे नहीं चिपटे रहना चाहते।

कोई भी पाठ्यसामग्री चाहे वह कितनी ही आलोकप्रद हो उस जनता के भीतर से धर्म को हटा नहीं सकती जो कि पूंजीवाद की मेहनत की चक्की में पिसी गई है और जो पूंजीवाद की अन्धी नाशकारी शक्तियों के लिये हितकर हुई है, जब तक कि वह जनता स्वयं इन सामाजिक तथ्यों से लड़ना नहीं सीखती जिनसे धर्म एक होकर, संगठित होकर, व्यवस्थित होकर और सचेत रूप से उभरा है; जब तक कि पूंजीवादी श्रेणी के हर प्रकार के शासन के विरुद्ध वह लड़ना नहीं सीखती।

क्या इसका 'यह अर्थ है कि धर्म विरोधी पाठ्य पुस्तकें अलाभकारी और फ़िज़ूल हैं ? नहीं, बिल्कुल नहीं। इसका अर्थ यह है कि सामाजिक प्रजातन्त्रवाद द्वारा अनीश्वरवाद के प्रचार को अधिक बुनियादी कामों—शोषकों के विरुद्ध शोषित जनता का श्रेणी संघर्ष—के विकास—के अन्तर्गत रखना होगा।

जो लोग द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की जड़ों तक (अथवा मार्क्स और एंजिल्स का दर्शन) नहीं पहुँचे हैं वे इस बात को नहीं समझ सकते या कम से कम शुरू में समझने योग्य नहीं है। क्या ? विचारधारा सम्बन्धी प्रचार को—निश्चयात्मक विचारों के प्रचार को अप्रधानता देना ? धर्म के विरुद्ध संस्कृति और प्रगति के हज़ार बरस पुराने शत्रु के विरुद्ध श्रेणी संघर्ष, क्षणिक, व्यावहारिक, आर्थिक और राजनैतिक मन्तव्यों के आगे अप्रधानता देना ?

मार्क्सवाद के विरुद्ध कुछ प्रचलित आरोप हैं, जिनसे मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मवाद सम्बन्धीपूर्ण अज्ञानता स्पष्ट होती है। यह असंगति जो उन लोगों को जो ऐसे आरोप लगाते हैं इस प्रकार उलझन में डाल देती है, स्वयं जीवन की असंगति है, ज़बानी' अथवा खोजकर निकाली हुई असंगति नहीं है।

अनीश्वरवाद के सैद्धान्तिक प्रचार, सर्वहारा के कुछ वर्गों के धार्मिक विश्वासों के टूटने और इन वर्गों के श्रेणी संघर्ष के असर, विकास और आम विशेषताओं के बीच, मोटी गाढ़ी लकीर खींच देना अद्वन्द्वात्मकवादी ढंग से तर्क करना है, ऐसा करना अस्थिर और सापेक्षिक सीमा को परम और स्थिर बना देना है, ऐसा करना उसे जो कि तथ्य से अविभाज्य रूप से सम्बन्धित है जबरदस्ती टुकड़े टुकड़े कर अलग कर देना है। मिसाल के लिये, मान लीजिये कि किसी जगह के किसी खास धन्धे में लगे सर्वहारा को अधिक श्रेणी सजग सामाजिक प्रजातन्त्रवादी अगुआगिरी करनेवालों (जो कि जैसे तर्कसंगत भी है, अनीश्वरवादी हैं) और पिछड़ी हुई जनता को जो कि अब भी गाँवों और किसानों से संबधित है, अब भी ईश्वर में विश्वास करती है, गिरजाघरों में जाती है अथवा पुरोहितों के सीधे असर में भी है, दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। मान लीजिये कि इनसब को मिलाकर इसाई मजदूर संघ (Christian Workers' Union) बनता है। यह भी मान लीजिये कि इस धन्धे में आर्थिक संघर्ष के नतीजे में एक हड़ताल हो गई है। मार्क्सवादी को सबके ऊपर हड़ताल आन्दोलन की सफलता को रख

चाहिये। इस संघर्ष में शामिल मजदूरों के बीच इसाई और अनीश्वरवादी विभाजन का विरोध निश्चय ही उसे करना चाहिये, उसे इस प्रकार के विभाजन के विरुद्ध ज़ोरदार तरीक़े लड़ना चाहिये।

ऐसी अवस्था में अनीश्वरवाद का उपदेश निरर्थक और अकल्याणकारी है—पिछड़े हुये लोगों को डरने न देने अथवा चुनाव में वोट न खोने के संकीर्ण विचार से नहीं, बल्कि श्रेणी संघर्ष की वस्तुत: प्रगति के दृष्टिकोण से–वह प्रगति जो कि वर्तमान पूंजीवादी समाज की मौजूदा स्थिति में, इसाई मज़दूरों को सामाजिक प्रजा तंत्रवादी बना देगी, उन्हें किसी भी अलंकारहीन धर्मोपदेश की अपेक्षा हज़ार गुना जोरदार तरीक़े से अनीश्वरवाद की तरफ़ ला देगी। ऐसे मौक़े पर और ऐसी परिस्थिति में अनीश्वरवाद का उपदेश करना उन धर्म संस्थाओं और पुरोहितों के हाथों में खेल जाना होगा जो इससे ज्यादा और कुछ नहीं पसंद करेंगे कि हड़ताल आन्दोलन में भाग लेने वाले मज़दूरों में धार्मिक मतों के अनुसार विभाजन हो जाय।

वह अराजकतावादी जो किसी भी कीमत पर ईश्वर के विरुद्ध युद्ध छोड़ने का उपदेश देता है सचमुच पुरोहितों और पूँजीपतियों की सहायता करता है, (अराजकतावादी हमेशा ऐसा करते ही हैं)। मार्क्सवादी को भौतिकवादी होना पड़ेगा, यानी, धर्म का शत्रु होना पड़ेगा। लेकिन उसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी होना होगा, यानी, उसे ऐसा भौतिकवादी होना पड़ेगा जो हवा में धर्म के विरुद्ध नहीं लड़ता, जो हवाई और शुद्ध सैद्धान्तिक प्रचार जो कि

हर समय और हर स्थान पर उचित है, के सहारे युद्ध नहीं छेड़ता; बल्कि जो सचमुच बढ़ते हुये ठोस श्रेणी संघर्ष-ऐसा संघर्ष जो कि मज़दूरों को और दूसरी चीज़ों से ज्यादा अच्छे ढंग से अनीश्वर-वाद की शिक्षा दे रहा है, का आधार लेकर धर्म के विरुद्ध युद्ध करता है। मार्क्सवादी के अन्दर यह क्षमता होनी चाहिए कि वह किसी ठोस परिस्थित को उसकी सम्पूर्णता में समझ ले। उसमें हमेशा अराजकतावाद और अवसरवाद के बीच की सीमा बाँधा लेने की क्षमता होनी चाहिये (यह सीमा सापेक्षिक, गति-शील और सतत परिवर्तनशील है, लेकिन है ज़रूर); उसे न हवाई, लफ़्ज़ी और अराजकतावादियों के फ़िज़ूल के "क्रान्ति वाद" के झंझट में फँसना चाहिये, न उसे उस निम्न मध्यम श्रेणी वाले या उदार बुद्धिवादी के अनबुझपन और अवसरवाद के चक्कर में फँसना चाहिये जो कि धर्म के विरुद्ध लड़ने से झिझकता है, अपने कर्तव्यों को भूल जाता है, ईश्वर में एक प्रकार का विश्वास करने के लिये अपने को समझा-बुझा लेता है और जो श्रेणी सघर्ष के हित के ख्याल से ही सब कुछ नहीं करता बल्कि छोटे, ज़लील बातों का जैसे गुस्सा न करने, विरोधी न बना लेने, डरा न देने आदि का ख्याल करके सब कुछ करता है; और जो इस बुद्धिमत्ता पूर्ण सिद्धान्त को मानता है कि "स्वयं रहो और दूसरों को रहने दो !"

धर्म के प्रति सामाजिक क्रान्तिकारियों के रुख सम्बन्धी तमाम सवालों को इसी दृष्टिकोण से हल करना चाहिये। उदाहरण के

लिये, क्या एक पुरोहित सामाजिक प्रजातन्त्रवादी पार्टी का सदस्य हो सकता है ? आम तौर से बिना किसी शर्त के 'हाँ' में इसका जवाब दिया जाता है और योरोपीय सामाजिक-प्रजातन्त्रवादी पार्टियों के अनुभव का प्रमाण भी पेश किया जाता है। लेकिन यह अनुभव मज़दूर-आन्दोलन में मार्क्सवादी सिद्धान्तों के लागू कर देने का ही केवल नतीजा नहीं था, बल्कि वह पश्चिमी योरोप की विशेष राजनैतिक परिस्थिति का भी नतीजा था।

जब रूस में वैसी परिस्थितियाँ नहीं हैं (इन परिस्थितियों के बारे में हम बाद में और भी कहेंगे) तो ऐसी हालत में बिना किसी शर्त के 'हाँ' कह देना ग़लत है। हमेशा के लिये हम यह नहीं कह सकते कि किसी भी हालत में सामाजिक प्रजातन्त्रवादी पार्टी में पुरोहित शामिल नहीं किये जा सकते। लेकिन इसके विरुद्ध भी हम स्पष्ट और निश्चयात्मक रूप से नहीं कह सकते।

अगर एक पुरोहित हमारे काम में सहयोग करने के लिये हमारे पास आता है—अगर वह ईमानदारी से पार्टी का काम करता है और पार्टी के प्रोग्राम का विरोध नहीं करता, तो हम उसे सामाजिक प्रजातन्त्रवादी पार्टी में ले सकते हैं, क्योंकि हमारे प्रोग्राम के मन्शे तथा सिद्धान्तों और उस पुरोहित के धार्मिक विश्वासों के बीच की असंगति को हम एक ऐसा मामला समझ सकते हैं, जिसमें वह अपना ही निषेध करता है। यह केवल उसका अपना मामला है। एक राजनीतिक पार्टी अपने सदस्यों की परीक्षा यह देखने के लिये नहीं ले सकती कि उनके दर्शन और

पार्टी के प्रोग्राम में कोई असंगति है या नहीं।

निश्चय ही पश्चिम योरप में ऐसी बात अपवाद के रूप में ही हो सकती है। रूस में तो यह सम्भव ही नहीं। लेकिन अगर उदाहरण के लिये, एक पुरोहित सामाजिक प्रजातन्त्रवादी पार्टी का सदस्य हो गया और उसने धार्मिक विचारों का प्रचार ही अपना खास और अकेला काम बना लिया तो, निश्चय ही, पार्टी को उसे निकाल देना पड़ेगा।

उन तमाम मजदूरों को जो कि अब भी ईश्वर में विश्वास करते हैं, हमें सामाजिक प्रजातन्त्रवादी पार्टी में शामिल ही नहीं कर लेना है, उन्हें भर्ती करने के प्रयत्न को हमें दूना करना होगा। इन मजदूरों के धार्मिक विश्वासों के अनादर के हम नितान्त विरोधी हैं। हम अपने प्रोग्राम के मन्शे के मुताबिक़ शिक्षित करने के लिये उन्हें भर्ती करते हैं, धर्म के विरुद्ध ज़ोरदार संघर्ष चलाने के लिये नहीं। हम पार्टी के भीतर विचार स्वातन्त्र्य देते हैं, लेकिन केवल एक सीमा तक। इस सीमा का आधार गिरोह बनाने की आज़ादी था*। जिन विचारों को पार्टी के बहुमत ने नहीं माना है, उनकी हिमायत करने वालों का साथ देने के लिये हम बाध्य नहीं हैं।

दूसरा उदाहरण : क्या सामाजिक प्रजातन्त्रवादी पार्टी के उन

---

*उस समय पार्टी ने विभिन्न विचारों के लोगों को अलग-अलग गिरोह बनाने को इजाज़त दे दी थी

सदस्यों को जो एलान करते हैं कि **"समाजवाद मेरा धर्म है"**, या इसी से मिलती-जुलती किसी और बात का एलान करते हैं, सभी हालतों में सेन्सर करना ज़रूरी है ? नहीं । निश्चय ही ऐसा करना मार्क्सवाद-समाजवाद से पीछे हटना है। परन्तु इस प्रकार के पीछे हटने का महत्व, उसकी विशेष गंभीरता, विशेष परिस्थितियों में बदलती जायेगी।

एक प्रचारक या और कोई भी अगर मजदूरों के बीच भाषण देते हुये अपनी स्थिति साफ़ करने के लिये अपने विषय की भूमिका के रूप में, पिछड़ी हुई जनता जिस प्रकार की शब्दावली की आदी है उसमें समझाने के लिये—अगर इस प्रकार बोलता है, तो यह अलग बात है। एक लेखक अगर "ईश्वर-निर्मित" या ईश्वर-निर्माता समाजवाद का (उदाहरण के लिये हमारे लूनाचारस्की और उनके सहयोगी के मन्शे के मुताबिक़) उपदेश देता है तो यह बात बिल्कुल दूसरी हो जाती है।

पहिले मामले में दोषी ठहराना कोरा बकवाद है। यह उसकी प्रचार की स्वतन्त्रता पर, उसके "समझाकर कहने वाले" ढंग पर ग़लत नियन्त्रण है।

दूसरे मामले में पार्टी की ओर से सेन्सर आवश्यक है, उसे होना चाहिये। क्योंकि पहिले में यह वक्तव्य कि "समाजवाद मेरा धर्म है" धर्म से एक क़दम आगे समाजवाद की ओर बढ़ना है, दूसरे में यह समाजवाद से धर्म की ओर एक क़दम जाना है।

अब हमें उन परिस्थितियों को देखना चाहिये जिनकी वजह से पश्चिम में "धर्म व्यक्तिगत मामला है" की अवसरवादी व्याख्या का जन्म हुआ। निश्चय ही ऐसा उन्हीं आम कारणों से हुआ जिनकी वजह से आम तौर से अवसरवाद का जन्म हुआ; जैसे क्षणिक लाभ के लिये मजदूरों के आन्दोलन के बुनियादी हितों का बलिदान कर देना।

सर्वहारा की पार्टी यह माँग करती है कि सरकार धर्म को व्यक्तिगत मामला घोषित कर दे, लेकिन एक मिनट के लिये भी वह जनता की इस अफ़ीम के विरुद्ध युद्ध के प्रश्न को, धार्मिक मिथ्या विश्वासों के विरुद्ध इस युद्ध के प्रश्न् को व्यक्तिगत मामला नहीं मानती। अवसरवादियों ने इस मसले को इतना बिगाड़ दिया है कि ऐसा लगने लगा है कि सामाजिक-प्रजातन्त्रवादी पार्टी धर्म को व्यक्तिगत मामला मानती है।

साधारण अवसरवादी विकृतिकरण के अलावा (जिसे हमारे ड्यूमा कमेटी ने धर्म के ऊपर वादाविवाद के समय अपने भाषणों में साफ़ नहीं किया) ऐसी विशेष ऐतिहासिक परिस्थितियाँ भी थीं, जिन्होंने आज योरोपीय सामाजिक प्रजातन्त्रवादियों में धर्म के प्रति काफ़ी उदासीनता पैदा कर दी है। ये परिस्थितियाँ दो प्रकार की हैं:—

पहिली:—धर्म के विरुद्ध क्रान्तिकारी पूँजीवादी श्रेणी का ऐतिहासिक काम है और पश्चिमें पूँजीवादी प्रजातन्त्रवाद ने अपनी क्रान्ति के ज़माने में, बहुत हद तक इस काम को—मध्य

युग के अवशिष्ट सामन्तवाद पर अपने हमले के काम को—अपने हाथों में लिया था (या अपने हाथों में ले रहा था)। फ्रांस और जर्मनी दोनों देशों में धर्म के विरुद्ध पूँजीवादी संघर्ष की एक परम्परा है, यह संघर्ष समाजवाद के आगमन के बहुत पहिले शुरू हो गया था (उदाहरण के लिये, विश्वकोष वाले और फ़ेवरबाख़)।

रूस में पूँजीवादी-प्रजातन्त्रवादी क्रान्ति की अवस्था के कारण इस काम का क़रीब-क़रीब पूरा बोझ मज़दूर श्रेणी पर आ पड़ा है। निम्न मध्यम श्रेणी—पापुलिस्टों* के प्रजातन्त्र ने इस मामले में हमारे लिये आवश्यकता से अधिक नहीं किया (जैसा कि नये ब्लैक हण्ड्रेड केडेस् या ब्लैक हण्ड्रेड आफ़ 'वेख़' सोचते हैं कि उसने किया) बल्कि योरप के मुक़ाबले में बहुत कम किया।

---

*रूस में इसे नरोदनिकी कहते थे। यह नरोद शब्द से बना है, जिसका अर्थ जनता है। रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन में ये लोग मार्क्स-वादियों से पहिले की पीढ़ी में थे। इनमें अधिकतर वह बुद्धिवादी होते थे, जिन्होंने 'जनता में जाना' और उसे शिक्षित करना अपना मिशन बना लिया था। ये लोग निम्न मध्यम श्रेणी के उस स्वप्नवादी समाजवाद का प्रचार किया करते थे, जो उनके विश्वास के अनुसार पुराने रूसी पंचायतों के आधार पर पूँजीवादी अन्धकार से रूस देश के बिना गुज़रे हुये बन सकता था। समाजवादी क्रान्तिकारी (Socialist Revolutionaries) उनके सीधे उत्तराधिकारी थे। यही लोग अक्तूबर क्रान्ति के बाद प्रतिक्रिया-वादी बन गये।

दूसरी तरफ़, धर्म के विरुद्ध पूँजीवादी युद्ध की परम्पराओं के के कारण योरप में अराजकतावादियों ने एक विशेष प्रकार के पूँजीवादी तरीक़े से उसका रूप बिगाड़ा। इस बात को बहुत पहिले ही मार्क्सवादियों ने साफ़ कर दिया था। पूँजीवाद के ऊपर "ग़ुस्से" के साथ आक्रमण करने के बावजूद भी अराजकतावादियों का यह दृष्टि कोण पूँजीवादियों से बिल्कुल मिलता-जुलता है।

लैटिन देशों के अराजकतावादियों और ब्लैंकिस्टों ने, जर्मनी के जोहान मोस्ट और उसके साथियों ने (संयोग से जोहान मोस्ट डुअरिगं का शिष्य था), और आस्ट्रिया के १९८० के क्रान्ति-कारियों ने, धर्म के विरुद्ध संघर्ष में क्रान्तिकारी वाक्य रचना को पूर्णता तक पहुँचा दिया।

इसमें आश्चर्य नहीं कि योरोपीय सामाजिक-प्रजातन्त्रवादी फिसल कर अराजकतावादियों से भी आगे निकल जाते हैं। यह स्वाभाविक है और किसी हद तक क्षम्य भी है। लेकिन, हम रूसी सामाजिक प्रजातन्त्रवादियों को चाहिये कि हम पश्चिम की विशेष राजनैतिक परिस्थितियों को न भूलें।

दूसरे, पश्चिम में, राष्ट्रीय पूँजीवादी क्रान्तिकारियों के बन्द हो जाने के बाद पूर्ण मत-स्वातन्त्रय के आविर्भाव के बाद धर्म के विरुद्ध प्रजातन्त्रात्म संघर्षों के प्रश्न को उस संघर्ष ने पीछे ढकेल दिया जिसे पूँजीवादी प्रजातन्त्रवाद ने इस हद तक बढ़ाया कि पूँजीवादी सरकारों ने, पुरोहितवाद के विरुद्ध उदारप्राय जेहाद

संगठित करके जान-बूझ कर जनता का ध्यान समाजवाद से हटाना चाहा।

जर्मनी में सांस्कृतिक युद्ध और फ्रांस में पुरोहितवाद के विरुद्ध पूँजीवादी जनतन्त्रवादियों के युद्ध की ऐसी ही रूप-रेखा थी।

पश्चिम के सामाजिक प्रजातन्त्रवादियों के बीच फैली हुई, आज की, धर्म के विरुद्ध संघर्ष के प्रति "उदासीनता" के पहिले पूँजीवादी पुरोहितवाद-विरोध का दौर-दौरा रह चुका था, जिसकी मन्शा थी कि मज़दूर जनता का ध्यान समाजवाद की तरफ़ से हट जाय।

और, यह बिल्कुल समझ में आने लायक़ और वाजिब बात है, क्योंकि सामाजिक प्रजातन्त्रवादियों को पूँजीवादी और बिस्मार्कवादी पुरोहित-विरोध का सामना करना पड़ता था, जिसमें धर्म के विरुद्ध संघर्ष को समाजवाद के लिये किये जाने वाले संघर्ष के नीचे रखने की नीति बरती जाती थी।

रूस की अवस्था बिल्कुल दूसरी है। सर्वहारा हमारी पूँजी-वादी-प्रजातन्त्रवादी क्रान्ति का नेता है। उसकी पार्टी को, मध्य युग के प्रत्येक अवशेष, जिसमें पुराना राज्यधर्म भी शामिल है, के विरुद्ध संघर्ष में, और उसे पुनर्जीवित करने या उसे दूसरी भित्ति प्रदान करने के प्रयत्न के विरुद्ध संघर्ष में, विचार-धारा सम्बन्धी नेता बनना पड़ेगा।

पार्टी की यह माँग कि धर्म को राज्य व्यक्तिगत मामला

घोषित कर दे, के स्थान पर यह एलान कि सामाजिक प्रजातन्त्र-वादियों और सामाजिक-प्रजातान्त्रिक पार्टी के लिये धर्म व्यक्तिगत मामला है—को अपनाने वाले अवसरवाद के लिये—जर्मनी के अवसरवादियों को, हालाँकि, ऐंजिल्स ने हल्की-सी फटकार बताई है; लेकिन वह उन रूसी अवसरवादियों को, जो कि जर्मनी वालों के इस विकृतिकरण की नक़ल सैकड़ों गुना ज्यादा तेज़ी से करते हैं, ज़रूर कड़ी डाँट सुनाते।

ड्यूमा के मञ्च से हमारी टुकड़ी ने यह एलान करके कि धर्म जनता का अफ़ीम है, बहुत ठीक किया। इस तरह उन्होंने एक उदाहरण रख दिया जिसे धर्म के प्रश्न पर रूसी सामाजिक प्रजातन्त्रवादियों के सभी भाषणों के लिये आधार बन जाना चाहिये। क्या, उन्हें और आगे बढ़ना चाहिये था और ज्यादा विवरण सहित अपने अनीश्वरवादी तर्क का विस्तार करना चाहिये था? हमारे विचार में नहीं। इससे सर्वहारा—राजनैतिक पार्टी के धर्म-विरोधी संघर्ष का कलेवर बढ़ जाने का खतरा पैदा हो जाता। इससे तो धर्म के विरुद्ध पूँजीवादी और समाजवादी संघर्ष के अन्तर की सीमा-रेखा ही बिल्कुल लुप्त हो जाती। पहिला कार्य जिसे सामाजिक-प्रजातन्त्रवादी टुकड़ी को ब्लैक हण्ड्रेड ड्यूमा में करना चाहिये था, सम्मानपूर्वक सम्पादित हुआ।

दूसरा, और सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण काम जो कि सामाजिक प्रजातन्त्रवाद के दृष्टिकोण से करने को था, वह था मजदूर श्रेणी के विरुद्ध संघर्ष में शामिल ब्लैक हण्ड्रेड सरकार और पूँजी-

पतियों की जो सहायता चर्च और पुरोहितों ने की उसमें उनके श्रेणी कारनामें को समझाना। यह भी शान के साथ किया गया।

तीसरे, यह समझाना भी ज़रूरी था कि जर्मन अवसरवादियों द्वारा रखे गये इस बात का कि "धर्म को व्यक्तिगत मामला घोषित कर देना चाहिये" क्या सही अर्थ है।

२६ मई (१३), १६०६ प्रालीतैरी नं० ४५

—:०:—

३

श्रेणियों और पार्टियों का धर्म के प्रति रुख़

डयूमा* में, बजट, होली सिनड*, पुरोहितीगिरी छोड़ने वालों

---

*रूसी पार्लियामेन्ट। १९०५ की क्रान्ति के बाद ज़ार को पार्लियामेन्ट अथवा डयूमा स्थापित करने के लिये मजबूर होना पड़ा था। पहिला डयूमा जिसके अधिकार बहुत कम थे, १९०६ में बुलाया गया। सरकार से झगड़ा हो जाने के कारण इसे समाप्त कर दिया गया। १९०७ में दूसरा डयूमा बुलाया गया, लेकिन उसकी भी यही दशा हुई। १९०७ में फिर एक तीसरा डयूमा जिसमें मताधिकार को और अधिक घटा दिया गया था, बुलाया गया। इसमें ज़िमींदारों और पूँजीपतियों का बहुमत हो गया। यह डयूमा अपनी अवधि समाप्त होने तक चलता रहा। चौथा डयूमा जो कि तीसरे डयूमा के बाद ही आया था, १९१७ की क्रान्ति द्वारा भगा दिया गया।

*होली सिनड : कट्टरपंथियों की सबसे ऊँची कार्यकारिणी जिसके सदस्यों की नियुक्ति होली सिनड के प्रोक्योरेटर (चर्च सम्बन्धी मामलों के मन्त्री) की सिफ़ारिश पर ज़ार किया करता था।

को फिर अधिकार मिलने और पुराने ईश्वारवादियों* के एकत्रित होकर पूजा-पाठ करने के सवालों पर वाद-विवाद से, धर्म और चर्च के प्रति रुख के अनुसार विभिन्न पार्टियों की रूप-रेखा ठहराने के लिये काफ़ी मसाला मिल गया। थोड़े में हम इस मसले की छानबीन करेंगे। हम ख़ास तौर से होली सिनड के बजट वाले वाद-विवाद पर ग़ौर करेंगे।

पहिला नतीजा जो ड्यूमा के बहस को ग़ौर से देखने पर हमें निकालना चाहिये वह सिर्फ़ यही नहीं है कि रूस में एक लड़ाकू पुरोहितवाद मौजूद है, बल्कि यह भी कि वह स्पष्ट रूप से अधिक बलवान और संगठित होता जा रहा है। २६ अप्रैल को विशप मित्रोफ़ान ने एलान किया था कि "ड्यूमा में हमने जो सबसे पहिला काम किया उसका लक्ष्य इस ड्यूमा में आये हुये जनता के सम्मानित प्रतिनिधियों को पार्टी-झगड़ों से ऊपर उठाने और उन सबको मिलाकर पुरोहितों का एक ऐसा गुट बना देने की ओर था जो तमाम सवालों पर स्वयं अपने नैतिक दृष्टि-कोण से बात-चीत करे।

---

*एक धार्मिक फ़िरक़ा जो १८ वीं सदी में उस कट्टरपंथी युनानी चर्च से अलग हो गया था, जो पुरानी रूढ़ियों और रस्मों से चिपका रहता था। बार-बार यह फ़िरक़ा ज़ार की सरकार से झगड़ता रहा। इसने स्तेन-कारेज़ीन और युगाचेव के विद्रोहों में ज़ोरदार हिस्सा लिया था। बाद में ज़ार की सरकार और चर्च द्वारा इस पर लगातार अत्याचार होते रहे।

"हम ऐसा क्यों नहीं कर सके ?.........क़सूर उनका है जो आप ही के साथ ड्यूमा में बैठते हैं (अर्थात् केडेट और वामपन्थी) जैसे वह पुरोहित-प्रतिनिधि तो विरोधी दल के सदस्य हैं। ये लोग ही पहिले थे, जिन्होंने अपनी आवाज़ उठाई और कहा कि जो हम चाहते थे वह एक पुरोहितवादी पार्टी बनाने के अलावा और कुछ नहीं था। और यह कि यही सबसे अधिक अवांछित बात थी।

"निस्सन्देह, रूसी कट्टरपन्थी पुरोहितों के पुरोहितवाद के बारे में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है—ऐसी बात तो हमारे भीतर कभी थी ही नहीं। एक अलग गुट बनाने का हमारा उद्देश्य शुद्ध नैतिक और न्यायपूर्ण था।

"लेकिन फिर भी, महाशयो, अब जब कि वामपन्थी प्रति-निधियों द्वारा हमारे भ्रातृत्वपूर्ण सम्बन्धों में झगड़े उठा देने के बाद भेद बढ़ गये हैं और गुटबन्दियाँ हो गई हैं तो आप (अर्थात् केडेट❀) इसके लिये हमको दोषी ठहराते हैं।"

बिशप मित्रोफ़ान ने अपने इस कुघड़ भाषण में अपना गुप्त भेद खोल दिया। वामपन्थी ड्यूमा के पुरोहितों की एक टुकड़ी को अलग "नैतिक" (जनता को धोखा देने के लिये यह शब्द "पुरो-

---

❀वैधानिक प्रजातन्त्रवादी शब्दों का छोटा रूप—यह नाम ड्यूमा के के पूँजीवादी उदार पार्टी का था।

हितवादी" शब्द से कहीं अच्छा है) गुट संगठित करने से रोकने के लिये दोषी है।

लगभग एक महीने बाद २६ मई को विशप युलोगियस ने ड्यूमा के पुरोहितों द्वारा स्वीकृत वह प्रस्ताव पढ़ा जिसमें एलान किया गया था कि : "ड्यूमा के पुरोहितों के सबसे बड़े बहुमत का विचार है कि कट्टर चर्च की पहलक़दमी और प्रधानता क़ायम रखने के लिये यह जरूरी है कि पुराने ईश्वरवादी लोगों को अपनी इच्छा के मुताबिक़ उपदेश देने या सभा बुलाने का अधिकार न मिले, न पुराने ईश्वरवादियों के पुरोहितों को धर्म-मन्त्री की उपाधि धारण करने की इजाज़त दी जाय।" इस प्रकार रूस के पुरोहितों का "शुद्ध नैतिक दृष्टिकोण" अत्यन्त विशुद्ध पुरोहितवाद के रूप में निखर आया।

ड्यूमा पुरोहितों के सबसे बड़े बहुमत ने तीसरे ड्यूमा में किस शुद्ध, नैतिक, न्यायपूर्ण दृष्टिकोण को रखा था ? उनके भाषणों के कुछ अंश ये हैं :—"मैं सिर्फ़ यह कहना चाहता हूँ कि इन सुधारों (चर्च सम्बन्धी) में पेशक़दमी चर्च के अन्दर से होनी चाहिये, बाहर से नहीं। राज्य की ओर से नहीं; बजट कमीशन की ओर से बिल्कुल नहीं। चर्च एक ईश्वरीय और सनातन संस्था है, उसके नियम निर्विकार हैं। जब राजनैतिक जीवन के आदर्श, जैसा कि हम जानते हैं, हमेशा बदलते रहते हैं"—(बिशप युलोगियस, २७ अप्रैल)।

भाषणकर्ता ने **"भयानक ऐतिहासिक समघटना"**—

कैथरीन द्वितीय के अन्तर्गत होने वाले चर्च सम्पत्ति के संसारीकरण की याद दिलाई है। "कौन कह सकता है कि जिस बजट कमीशन ने, इस साल, चर्च की सम्पत्ति को सरकारी नियन्त्रण में रखने की इच्छा ज़ाहिर की है, वही अगले साल उसे सरकारी खज़ाने में शामिल कर देने और फिर उस सम्पत्ति का इन्तज़ाम चर्च के हाथों से छीन कर बिल्कुल सरकारी हाथों में दे देने की इच्छा नहीं करेगा ?"

"........चर्च के नियम बताते हैं कि चूँकि ईसाई आत्मायें बिशप के हाथों में सुपुर्द कर दी गई हैं, इसीलिये और भी, चर्च की सम्पत्ति बिशप के ही हाथों में रहनी चाहिये।........आज तुम्हारी आध्यात्मिक माँ, पवित्र, कट्टर चर्च, तुम्हारे सामने (ड्यूमा के सदस्यों के सामने) जनता के प्रतिनिधियों की हैसियत से नहीं, बल्कि अपने आध्यात्मिक पुत्रों के सामने खड़ी है।"

यह शुद्ध पुरोहितवाद है। "जिस तरह सनातन और ईश्वरीय परिवर्तनशील और मानवीय से ऊँचा है, उसी तरह चर्च राज्य से ऊँचा है। चर्च-सम्पत्ति के संसारीकरण के लिये चर्च राज्य को कभी भी क्षमा नहीं कर सकता। चर्च अपने लिये शासक और प्रधान स्थान की माँग करता है। उसके लिये ड्यूमा के प्रतिनिधि केवल उस हद तक जनता के प्रतिनिधि नहीं है, जितने कि वे "आध्यात्मिक पुत्र हैं।"

जैसा कि सामाजिक-प्रजातन्त्रवादी सुरक़ाव के लिये कहा गया है, ये केवल सुफ़ेदपोश पादड़ी नहीं है, बल्कि ये "ग़ुलामी

के सुफ़ेदपोश वकील हैं।"

चर्च के सामन्तवादी विशेषाधिकारों की रक्षा मध्य युगवाद की यह खुली रक्षा—तीसरे ड्यूमा के बहुमत वाले पुरोहितवाद की नीति का यही सार है। बिशप युलोगियस इसका अपवाद बिल्कुल नहीं है।

गेपेत्स्की इस "संसारीकरण" को असहनीय "अपमान" समझकर इसके विरुद्ध कमर बाँधे खड़ा है (अप्रैल २७)। पुरोहित मैश्केविख अक्तूबरिस्टों* की रिपोर्ट पर गर्ज कर कहते हैं कि, "वह उन ऐतिहासिक और व्यवस्थात्मक नीवों पर आघात करता है, जिन पर हमारा चर्च-जीवन आधारित रहा है और रहेगा; जिससे वह रूसी कट्टरपंथी चर्च के जीवन और कामों को व्यवस्थात्मक मार्ग से उस मार्ग पर ले जा सके। जिस पर चलकर चर्च के सच्चे शासक यानी बिशप धर्मोपदेशकों से मिलकर अपने लगभग सारे अधिकारों को व्यवस्थात्मक शासकों हाथों में सुपुर्द कर देंगे। यह दूसरे लोगों की जायदाद हथियाने से कम नहीं है। चर्च और उसकी जायदाद हड़पने से यह कम नहीं है। भाषणकर्ता चर्च-जीवन की व्यवस्थात्मक परिपाटी को नष्ट करने की ओर हमें ले जारहा है। वह कट्टर चर्च और उसके अर्थ सम्बन्धी कामों को राज्य-ड्यूमा—एक ऐसी संस्था

---

*उदार पूँजीपतियों के दक्षिण-पंथी जो अक्तूबर १६०५ वाले ज़ार-शाही के एलान में घोषित प्रतिबन्ध-पूर्ण सुधारों से सन्तुष्ट थे।

जिसमें नाना प्रकार के सह्य और असह्य धार्मिक विश्वासों वाले हमारे राज्य के लोग हैं—के अन्तर्गत करना चाहता है (अप्रैल २७)।"

रूसी नरोदनिकों और उदार दलवालों ने बहुत दिनों अपने को इस "सिद्धान्त" की वजह से तसल्ली दी या धोखा दिया कि रूस में लड़ाकू पुरोहितवाद—चर्च के शासकों और व्यवस्थात्मक शक्तियों के बीच संघर्ष के लिये कोई आधार नहीं है। हमारी क्रान्ति ने नरोदनिकों और उदार दलवालों की मिथ्या धारणाओं की तरह इस मिथ्या धारणा को भी नष्ट कर दिया।

जब कि एकतन्त्रवाद सुदृढ़ और अक्षुण्ण रूप से स्थापित था पुरोहितवाद छिपे हुये ढंग से चल रहा था। सर्वशक्तिशालिनी पुलिस और नौकरशाही ने "समाज" और लोगों की आँखों से साधारणतया श्रेणी संघर्ष को और विशेषतया "दास-प्रभु और सुफ़ेदपोश पादरियों" तथा "दलित कमीनों" के संघर्ष को छिपा दिया था। क्रान्तिकारी सर्वहारा और किसानों ने सामन्तवाद में जो पहिली दरार पैदा की उसी से सारा पर्दाफ़ाश हो गया। ज्योंही सर्वहारा जनता और पूँजीवादी प्रजातन्त्र के आगे बढ़े हुये लोगों ने अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को—संगठन करने के उस अधिकार को जिसे उसने १६०५ के अन्त में जीता था—इस्तेमाल करना शुरू किया, उसी समय प्रतिक्रियावादी वर्गों ने भी अपने को स्वतन्त्र रूप से खुलकर संगठित करना शुरू किया।

इन वर्गों ने अपने को उतना खुलकर संगठित नहीं किया या उतना साफ़-साफ़ एकतन्त्रवादी रूप में सामने नहीं आये—ऐसा उन्होंने इसलिये नहीं किया कि वे कमज़ोर थे, बल्कि इसलिये कि वे काफ़ी मज़बूत थे। इसलिये नहीं कि वे राजनीतिक युद्ध संगठित करने और छेड़ने के क़ाबिल नहीं थे, बल्कि इसलिये कि उस समय उन्होंने किसी गंभीर श्रेणी-संस्था की आवश्यकता नहीं समझी। उनको ऐसा विश्वास नहीं था कि एकतन्त्रवाद और सामन्तवाद के अनुयायियों के विरुद्ध रूस में एक जन आन्दोलन सम्भव है। कोड़ों और कमीनों को क़ाबू में रखने के लिये उन्हें उसकी उपयोगिता में पूरा विश्वास था।

एकतन्त्रवाद के शरीर में पहिले घाव ने ही उन तमाम सामाजिक शक्तियों को—जो कि एकतन्त्रवाद की समर्थक थीं और जिन्हें उसकी ज़रूरत भी थी—खुलकर सामने आने के लिये मजबूर कर दिया। वह पुराना कोड़ा उस जनता के लिये अब कारगर न रहा जिसकी वजह से ६ जनवरी की घटनायें घट सकीं, जिन्होंने १६०५ का हड़ताल—आन्दोलन संगठित किया, जिन्होंने अक्तूबर-दिसम्बर क्रान्ति का संगठन किया। उन्हें स्वतन्त्र राजनीतिक कार्यों का सहारा लेना पड़ा। संगठित भद्रलोक को ब्लैक-हण्ड्रेड का संगठन करना पड़ा और अत्यन्त निर्मम ज़ुल्मों का सहारा लेना पड़ा। "चर्च के शासकों"—बिशपों—को प्रतिक्रियावादी पुरोहितों को एक स्वतन्त्र शक्ति के रूप में संगठित करना पड़ा।

तीसरे ड्यूमा और इस काल की रूसी क्रान्ति-विरोध की विशेषता इस बात में थी कि इन प्रतिक्रियावादी शक्तियों के संगठन के लिये—जो कि खुलकर सामने आया और राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ने लगा—विशेष ब्लैक हण्ड्रेड "पूँजीवादी पार्लियामेन्ट"—की नितान्त आवश्यकता पड़ गई। लड़ाकू पुरोहितवाद ने अपना रूप दिखाया और अब रूसी सामाजिक प्रजातन्त्रवाद को पूँजीवादी पुरोहितों और पूँजीवादी पुरोहित विरोधियों के झगड़ों को देखने और उनमें हिस्सा लेने का मौक़ा मिलने लगा। आज हमारा काम है सर्वहारा को एक अलग श्रेणी में संगठित होने में मदद करना, जिससे वह अपने को पूँजीवादी प्रजातन्त्रवाद से अलग कर सके; लेकिन प्रचार और आन्दोलन के तमाम साधनों को—जिसमें ड्यूमा का ट्रिब्यून भी शामिल है—इस्तेमाल करना भी इसी काम का हिस्सा है, जिससे जनता को समाजवादी पुरोहित-विरोध और पूँजीवादी पुरोहित-विरोध का अन्तर समझाया जा सके।

उन अक्तूबरिस्टों और केडेट्स ने, जिन्होंने तीसरे ड्यूमा में परम दक्षिण पंथियों, पुरोहितों और सरकार पर हमला किया था, चर्च और धर्म की ओर पूँजीपतियों का रुख स्पष्ट करके हमारे काम को बहुत ज्यादा आसान कर दिया। केडेट्स तथा दूसरे प्रगतिशीलियों का क़ानूनी प्रेस पुराने विश्वासवादियों के सवाल पर ज्यादा ज़ोर डाल रहा है और इस बात का महत्व बहुत बढ़ा रहा है कि केडेट्स सरकार के विरुद्ध बोले और उन्होंने चाहे

बहुत कम ऊँचे अक्तूबर ३० वाले 'सुधारों' के रास्ते को अपनाया है।"

बहरहाल, हम लोग उस प्रश्न के पीछे छिपे सिद्धान्त में—यानी चर्च और धर्म की ओर आम पूँजीपतियों के रुख में—जिसमें वे केडेट्स भी शामिल हैं जो प्रजातन्त्रवादी होने का दावा करते थे—बहुत अधिक दिलचस्पी रखते हैं। हम नहीं चाहते कि पुराने विश्वासवादियों और प्रभुताशाली चर्च के झगड़ों और उन अक्तूबरिस्टों के आचरण सम्बन्धी छोटे प्रश्न—जो कि कुछ हद तक पुराने विश्वासवादियों से बँधे हैं या आर्थिक रूप से उन पर निर्भर हैं (उदाहरण के लिये—कहा जाता है कि "गोलोस मोस्कोवी"* को पुराने विश्वासवादियों से आर्थिक सहायता मिलती है)—श्रेणी की हैसियत से पूँजीवादियों के हितों और नीति के बुनियादी सवाल को ढँक लें।

काउन्ट उवारोव, जिसमें अक्तूबरिस्टों की ओर झुकाव है, लेकिन जिसने अक्तूबरिस्ट टुकड़ी से स्तीफ़ा दे दिया है, का भाषण पढ़िये। वह सामाजिक प्रजातन्त्रवादी सुकोव के बाद बोला था, लेकिन वह मज़दूरों के प्रतिनिधियों द्वारा उठाये गये प्रश्नों के बुनियादी सिद्धान्तों को बचा गया। उवारोव ने सिनड और पवित्र सिनड के प्रोक्योरेटर पर, चर्च के कुछ करों और सामूहिक कोष के ख़र्चे के बारे में, ड्यूमा को समाचार देने में उनकी ढीला-ढीली

*मास्को की आवाज़—अक्तूबरिस्टों का दैनिकपत्र।

के कारण सिर्फ़ आक्रमण किया। अक्तूबरिस्टों के प्रतिनिधि-कामेनेस्की ने भी इसी मार्ग को अपनाया; उसने माँग की कि "युनानी चर्च को मज़बूत करने के लिये" सामूहिक प्रार्थना की आज्ञा दी जाय।

तथाकथित "वामपन्थी अक्तूबरिस्ट" कापस्तिन ने इसी विचार शैली का विकास किया। वह चिल्लाकर कहते हैं, "अगर हम लोगों के जीवन की ओर, किसानों के जीवन की ओर ध्यान दें तो इस दुर्दशा को हम देख सकेंगे—धार्मिक जीवन, जनता के नैतिक आचार का सबसे महत्वपूर्ण और एक मात्र आधार—छिन्न-भिन्न हो रहा है। आत्मा के आदेशों के स्थान पर हम किस चीज़ को ला रखेंगे? निश्चय ही, श्रेणी संघर्ष अथवा एक या दूसरी श्रेणी के हितों की धारणा को हम आत्मा के आदेशों के स्थान पर नहीं रख सकते। हमारे सामाजिक जीवन में घुस जाने वाले ये विचार दुःखद हैं। अतः धर्म को नैतिक जीवन का आधार बना रहने देने के लिये और धर्म तक सारी जनता की पहुँच होने के लिये यह आवश्यक है कि इस धर्म के पथ-प्रदर्शकों के पास पूरा से पूरा अधिकार रहे.......।"

क्रान्ति-विरोधी पूँजीपतियों का प्रतिनिधि धर्म को मज़बूत करना चाहता है, जनता के ऊपर धर्म का असर बढ़ाना चाहता है। वह "सुफ़ेदपोश अफ़सरों" की अयोग्यता और दक़ियानूसीपन को समझता है और चर्च के अधिकार को कमज़ोर करने की वजह से शासक श्रेणियों को पहुँचने वाले नुक़सान को भी समझता है।

अक्तूबरिस्ट, पुरोहितवादियों की बढ़ा-चढ़ा कर कही गई बातों और पुलिस की निगरानी के विरुद्ध लड़ता है, जिससे कि जनता के ऊपर धर्म का असर बढ़ जाय। जनता को बेवकूफ़ बनाने के अत्यन्त भोंड़े, अत्यधिक पुराने और नितान्त बेअसर तरीक़ों के स्थान पर वह और भी चालाकी से भरे और विषद् ढंगों को अपनाता है। पुलिस का धर्म अब जनता को बेवकूफ़ बनाने के लिये काफ़ी न था। 'हमको ऐसा धर्म दो जो अधिक उदात्त, अधिक संस्कृत, अधिक नूतन हो; वह ऐसा धर्म हो जो गिर्जा के स्वयं शासक सम्मेलनों के ज़रिये अपना सारा काम चला सके'—यही माँग तो पूँजीवादी एकतन्त्रवादियों से करते हैं।

और, केडेट करुलोव इसी बात को **पूरी तरह** मानते हैं। यह उदार ग़द्दार (जो कि **नरोद्नाया वोल्या** से बढ़कर दक्षिण पंथी केडेटों से आ मिला) चर्च के "अराष्ट्रीयकरण" को बुरा-भला कहता है जिसका अर्थ यह हुआ कि जनता, साधारण आदमी, चर्च-जीवन में हिस्सा लेने से रोके जाते हैं। यह बात उनके "**दिल को धक्का देने वाली**" है कि जनता का विश्वास धर्म से उठता जा रहा है (यही उन्होंने कहा भी)।

मेनशेविकों की तरह वे भी इस बात पर रोते हैं कि, "चर्च में अन्तर्हित जीवन के मूल्य नष्ट हो रहे हैं। चर्च के लिये ही नहीं राज्य के लिये भी बहुत बड़ा अनिष्ट हो रहा है।"

कट्टर युलोगियस के इस विशेष ढोंगपूर्ण कथन का वह

वर्णन करते हैं कि, चर्च का काम सनातन और अनाशवान है। इसका अर्थ यह हुआ कि चर्च और राजनीति को मिलाना "सोनहरे शब्दों की भाँति"—असम्भव है। उन्होंने चर्च के ब्लैक हण्ड्रेड से मिलने का विरोध इसलिये किया कि "चर्च आज से भी ज़्यादा शक्ति और गौरव के साथ—ईसामसीह की भावना—प्रेम और स्वतन्त्रता के अनुसार, अपने महान और पवित्र कार्य को कर सके।"

ड्यूमा के मंच से कहे हुये कारोलोव के "संगीतमय" शब्दों का मज़ाक़ उड़ाकर कामरेड बेलियोसोव ने बहुत अच्छा किया। यह भी बताया जाना चाहिए था—और यह काम ड्यूमा के मंच से जल्दी से जल्दी किया जाना चाहिये—कि केडेट का दृष्टिकोण अक्तूबरिस्टों से बिल्कुल मिलता-जुलता है; और साधारण कट्टरपंथी रूसी "बतूश्का"* द्वारा इस्तेमाल किये गये ढोंग से भी ज़्यादा चालाकी से भरे हुये चर्च के तरीक़े से जनता को धार्मिक नशा खिलाकर बेवकूफ़ बनाने का कार्य संगठित करने की ओर "संस्कृत" पूँजीवाद के सम्मान से ज़्यादा यह और कुछ नहीं है।

जनता को आध्यात्मिक ग़ुलामी के बन्धन में जकड़े रहने के लिये चर्च और ब्लैक हण्ड्रेडों को मजबूत डोरी में बाँधे रहना चाहिये—ऐसा ही पुरुशकेविख के मुख से कट्टरपन्थी ज़िमीदार और पुराने आतंक जमाने वाले पुलिस के अफ़सर कहते हैं।

---

*Little Father—पुरोहित।

हुजूर, यह आपकी ग़लती है, क्रान्ति-विरोधी पूँजीवादी लोग कोरोलोव के द्वारा जवाब देते हैं, ऐसा करके आप, लोगों को धर्म से दूर हटा देंगे। हम लोगों को और भी ज्यादा मक्कारी और भी चालाकी, और भी सतर्कता से काम करना चाहिये। हमें भोंड़े और मूर्ख ब्लैक हण्ड्रेड को हटाकर अपना रास्ता साफ़ कर लेना चाहिये। हमें **"चर्च के अराष्ट्रीयकरण"** के विरुद्ध संघर्ष छेड़ देना चाहिये। हमें पादरी युलोगियस के इन सुनहरे शब्दों को कि, "चर्च राजनीति से परे है" अपने झण्डे पर लिख लेना चाहिये।

केवल इसी तरह हम पिछड़े हुये श्रम जीवियों के एक हिस्से को और विशेष तौर से निम्न मध्यम श्रेणी वालों और किसानों को बेवकूफ़ बना सकेंगे। केवल इसी तरह हम नवोत्थित चर्च की आध्यात्मिक ग़ुलामी में जनता को जकड़े रखने के अपने "महान, पवित्र कार्य" में सहायता कर सकेंगे।

हमारे उदार प्रेस, जिसमें रेख❀ भी शामिल हैं, स्त्रूव और उसके साथियों को वेख* नामी संग्रह छापने के लिये प्रताड़ित करते रहे हैं। लेकिन कोरोलोव, ड्यूमा की प्रजातान्त्रिक पार्टी के स्पीकर ने, स्त्रूव और उसके साथियों को प्रताड़ित किया है

❀Speech—वैधानिक प्रजातन्त्रवादी का मुख पत्र।

*Guide Post (१६०६)—उदारपन्थियों का लेख संग्रह जिसमें प्रतिक्रिया काल के विद्वानों में फैले हुये विचार मिलते हैं।

और बुरा-भला कहने वाले घृणित ढोंग का बहुत अच्छी तरह भण्डाफोड़ किया है। स्त्रूव वही कहते हैं जो कारोलोव और मिल्यूकोव सोचते हैं। उदारपन्थी स्त्रूव को केवल इसलिये लाञ्छित करते हैं क्योंकि उन्होंने सत्य को स्पष्ट रूप से सामने रख दिया। उन्होंने दुराव-छिपाव से काम नहीं लिया। उदार-पन्थी जो कि वेख की भर्त्सना करते हैं और वैधानिक प्रजातान्त्रिक पार्टी का समर्थन भी करते जाते हैं, जनता को अत्यन्त निलर्ज्जता-पूर्वक धोखा देते हैं, जब कि वह असंयत परन्तु स्पष्ट शब्दों को बुरा-भला तो कहते हैं, लेकिन करते बिल्कुल वही हैं जो इनके द्वारा कहा गया है।

ड्यूमा में इस विषय पर बहस होते समय त्रूदोविकी* के आचरण के सम्बन्ध में कुछ कहना ही नहीं है। हमेशा की तरह त्रुदोविक किसानों और त्रुदोविक बुद्धि-जीवियों के रुख में साफ़ अन्तर था, इसमें बुद्धि-जीवी ही घाटे में रहा। बुद्धि-जीवी हमेशा ही वैधानिक प्रजातन्त्रवादियों का नेतृत्व स्वीकार करने के लिये तैयार रहा। किसान रोज़काव ने अपने भाषण के द्वारा निस्सन्देह राजनैतिक श्रेणी सजगता की नितान्त कमी का परिचय दिया। उसने केवल केडेट की इन बातों को ही दोहराया कि रूसी लोगों की लीग धर्म को मज़बूत करने में नहीं, उसे नष्ट करने में मदद करती है। लेकिन वह कोई प्रोग्राम सामने नहीं रख सका।

दूसरे तरफ़ जब वह ग़ैर बनावटी तरह से पुरोहित के जुल्मों और पादरियों की जबरन वसूलयाबी—विवाहोत्सव को सम्पन्न

करने के लिये अपनी दक्षिणा के अलावा "वोद्का की बोतल, सैन्डविच, एक पौंड चाय और कभी-कभी ऐसी चीज़ें माँगते हैं जिनको मैं इस मंच से बताने की हिम्मत भी नहीं कर सकता—" के बारे में बताते हुये नंगा और अपरिष्क्रित सत्य का उद्घाटन करने लगा तो ब्लैक हण्ड्रेड ड्यूमा आवेश में आ गया। दक्षिण-पन्थियों की ओर से वहशियाना आवाज़ आई, "शर्म, लज्जा-जनक !"

ब्लैक हण्ड्रेड गुर्राये क्योंकि उन्होंने देखा कि पादरियों द्वारा ज़बरदस्ती वसूलयाबियों और विवाहोत्सव में लिये गये दक्षिणा के दर के साफ़ किसानी क़िस्से किसी भी सैद्धान्तिक, नैतिक, धर्म-विरोधी अथवा चर्च-विरोधी वक्तृता से कहीं भी ज़्यादा ज़ोरदार तरीक़े से जनता को क्रान्तिकारी बना देंगे। और, कट्टर-पन्थियों ने तीसरे ड्यूमा में एकतन्त्रवाद की रक्षा करते हुये अपने सहयोगी मेयेन्दोर्फ़ को इतना डरा दिया कि उसने रोज़कोव को ट्रिब्यून से बाहर निकाल दिया (सामाजिक प्रजातन्त्र-वादियों ने कई त्रूदोविकों, वैधानिक प्रजातन्त्रवादियों और दूसरों की सहायता से इसका विरोध किया)।

हालाँकि त्रुदोविक—किसान रोज़कोव का भाषण बिल्कुल प्रारम्भिक था, फिर भी उसने पूरी तौर से उस बड़े अन्तर को सामने रख दिया जो केडेटों द्वारा धर्म के ढोंग से भरी, जानी-समझी रक्षा और किसानों की प्रारम्भिक, अज्ञानपूर्ण कामचलाऊ धार्मिकता में था। इन किसानों के जीवन की दुर्दशाओं ने—

अपने ही से और अनिच्छा से भी—उनमें पुरोहितों के ज़बर-दस्ती रुपये वसूल करने के खेलाफ़ सत्यमेव क्रान्तिकारी क्रोध और मध्य युगवाद के विरुद्ध डट कर लड़ने की चेतना जागृत कर दी थी।

केडेट उन क्रान्ति-विरोधी पूँजीपतियों के प्रतिनिधि हैं जो जनता के विरुद्ध धर्म को फिर से जमाना और मज़बूत करना चाहते हैं। रोज़कोव उस क्रान्तिकारी, पूँजीवादी प्रजातन्त्रवाद के प्रतिनिधि हैं जिसका पूर्ण विकास अभी नहीं हुआ है। जो अभी ना समझ है, जो पिसा हुआ है, जो दूसरों पर निर्भर है, इधर-उधर बिखरा हुआ है, लेकिन जिसके भीतर ज़िमीदारों, पुरोहितों और एकतन्त्रवादियों से संघर्ष करने के लिये क्रान्तिकारी क्षमताओं की अक्षय निधियाँ हैं।

रोज़कोव से अधिक सजगता के साथ बुद्धि-जीवी त्रूदोविक रोज़नोव केडेट के समीप आया। रोज़नोव ने राज्य से चर्च के सम्बन्ध विच्छेद करने की माँग को वामपक्षियों की माँग बताई; लेकिन वह पुरोहितों को राजनीतिक संघर्षों में भाग लेने से रोकने के लिये बने हुये चुनाव सम्बन्धी नियमों में सुधार करवाने के लिये प्रतिक्रियावादी निम्न मध्यम श्रेणी के जुम्लों को इस्तेमाल करने से अपने को बाज़ न रख सका।

जिस समय खास मध्यम श्रेणी का किसान अपने जीवन की दशाओं से सम्बन्धित सच्चाइयाँ बताने लगता है तो स्वयं ही एक क्रान्तिकारी जोश उबल पड़ता है; लेकिन जब एक बुद्धि-जीवी

त्रुदोविक बोलता है तो इस जोश का बिल्कुल पता ही नहीं रहता। और बजाय इस जोश के हमें उलझे हुये और कभी-कभी घृणित जुम्ले सुनने को मिलते हैं।

यह स्वयं सिद्ध सत्य, कि जब रूसी किसान सर्वहारा नेतृत्व के पीछे चलने लगेंगे तभी वे उन सामन्तवादी ज़िमीदारों, सुफ़ेदपोश ग़ुलाम-मालिकों और सामन्ती राजसत्तावादियों को उखाड़ फेंक सकेंगे जो कि उन्हें सताते और दबाते हैं—सौवें और हज़ारवें बार फिर सही उतरता है।

श्रम-जीवियों की पार्टी और श्रम-जीवी श्रेणी का प्रतिनिधि सामाजिक-प्रजातन्त्रवादी सुरकोव ड्यूमा में अकेला आदमी था, जिसने उस वाद-विवाद को सैद्धान्तिक वाद-विवाद के स्तर तक उठाया। और बिना किसी द्विधा के साफ़ बताया कि सर्वहारा का क्या रुख धर्म और चर्च के प्रति है और तमाम संयत तथा स्पष्ट प्रजातन्त्रवादियों का क्या रुख उसके प्रति होना चाहिये।

"धर्म लोगों का नशा है"........"जनता के इन घातक शत्रुओं को जो जनता की बुद्धि को नष्ट कर देते हैं, जनता के धन में से एक पैसा भी नहीं मिलना चाहिये"—ब्लैक हण्ड्रेड ड्यूमा में एक समाजवादी का यह सीधा, बेलौस और खुला रणघोष एक चुनौती की तरह गूँज उठा। इस चुनौती को लाखों सर्वहाराओं ने स्वीकार भी किया। वे उसे जनता में फैलायेंगे, और वह जनता समय आने पर उसे क्रान्तिकारी कार्य में परिणत कर देगी।

नं० ६, जून १७ (४), १९०९ —सोशल डेमोक्रैट

४

लड़ाकू भौतिकवाद के महत्व पर

......इस वक्तव्य* में कहा गया है कि वह सभी लोग जो "मार्क्सवादी झण्डे के नीचे (Under the Banner of Marxism) नामी पत्रिका के आस पास इकट्ठा हो गए हैं कम्यु निस्ट नहीं है, बल्कि यह कि वह सन्तत भौतिकवादी हैं। मेरा विचार है कि कम्युनिस्टों और ग़ैर-कम्युनिस्टों का यह मेल बिल्कुल आवश्यक है और वह पत्रिका के कामों को बहुत अच्छी तरह बतलाता है। एक सबसे गंभीर और खतरनाक ग़लती जो कि कम्युस्टि और आम तौर से सभी क्रान्तिकारी (जिन्होंने महान् क्रान्ति के प्राथमिक कार्यों को अत्यन्त सुचारु रूप से किया है) कर सकते हैं वह यह सोचना है कि केवल क्रान्तिकारियों के हाथों से ही क्रान्ति हो सकती है। उसके उल्टे, इसलिये कि गंभीर क्रान्तिकारी कार्य सफल हो सके, यह समझना आवश्यक है और इसी बात से लोगों को सीख भी लेनी चाहिये कि क्रान्तिकारी केवल सचमुच आगे बढ़े हुये प्रगतिशील श्रेणियों के अगुआ मात्र का काम कर सकते हैं। ये अगुआ अपने इस काम को तभी

---

*"मार्क्सवादी झण्डे के नीचे" (Under the Banner of Marxism) पत्रिका के सम्पादक मंडल द्वारा सिद्धान्तों के संबंध में वक्तव्य का चर्चा इस लेख में किया गया है। सं०

पूरा कर सकते हैं जब कि वे उस जनता से सम्पर्क बनाये रहें जिसका वे नेतृत्व करते हैं और सारी जनता को सचमुच आगे ले चलें। काम के विभिन्न क्षेत्रों में बिना ग़ैर—कम्युनिस्टों से एकाकिये सफल कम्युनिस्ट रचनात्मक प्रयत्न का सवाल ही नहीं उठता।

भौतिकवाद और मार्क्सवाद की जिस रक्षा का भार "मार्क्स-वादी झण्डे के नीचे" पत्रिका (Under the Banner of Marxism) ने अपने ऊपर लिया है उसके बारे में भी यह बात सच है। सौभाग्य से, रूस में आगे बढ़े हुये सामाजिक विचारों की विशेष धाराओं के पीछे ठोस भौतिकवादी परम्परा है। जी० बी० प्लैखानोव के अलावा चेरनीशेविस्की का नाम ले लेना काफ़ी होगा। आज के नरोदनिक (जनता के समाजवादी, समाजवादी-क्रान्तिकारी, इत्यादि) चलता, प्रतिक्रियावादी दार्श-निक-सिद्धान्तों के पीछे, इस चेरनीशेविस्की से आम तौर से दूर हट जाते हैं। इन नरोदनिको ने योरोपीय विज्ञान के, तथाकथित "अन्तिम शब्द" की चकाचौंध के सामने हार मान ली। वे इस चमक के पीछे छिपे नाना प्रकार के पूँजीवादी जुल्मों, धारणाओं और प्रतिक्रिया को न देख सके।

जो भी हो, रूस में अब भी ग़ैर-कम्युनिस्ट दलों में भौतिक-वादी हैं और निस्सन्देह वे अभी बहुत दिनों तक रहेंगे। और, यह हम लोगों स्पष्ट कर्तव्य है कि हम तमाम संयत लड़ाकू भौतिकवाद के मानने वालों का सहयोग दार्शनिक प्रतिक्रिया और

तथाकथित, "सुसंस्कृत वर्गों" की दार्शनिक धारणाओं के विरुद्ध संघर्ष में प्राप्त करें। यह कह कर कि आज के समाज में दर्शन शास्त्र के आचार्य आमतौर से "पुरोहितवाद के उपाधि-प्राप्त मित्र" के अलावा और कुछ नहीं हैं। दिजजेन बड़े ने (Dietzgen Senior)—उसे उसके दिखावा करने वाले परन्तु अधिक अयोग्य पुत्र से मिलाना नहीं चाहिये—सही ढंग से, सफ़ाई और स्पष्टता से उन दार्शनिक धाराओं पर, जो कि अपना रंग पूंजी-वादी देशों में जमाये हुये हैं और जिन्होंने उनके दार्शनिकों और प्रकाशकों का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, मार्क्सवादी दृष्टिकोण के बुनियादी उसूलों को बताया है।

हमारे रूसी बुद्धिजीवी जो तमाम पिछड़े हुये देशों के अपने भाइयों की तरह अपने को आगे बढ़ा हुआ समझते हैं इस प्रश्न को उस स्तर तक नहीं उठाना चाहते जिनका निर्देश दिजजेन के शब्दों में मिलता है। और, वे ऐसा इसलिये नहीं करते क्योंकि वे सच्चाई से घृणा करते हैं। जिस ढंग से आजकल के सभ्य लोग राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से शासक-पूँजी-वादियों पर निर्भर हैं उस पर विचार कर लेना—चाहे एक मिनट के लिये ही सही—दिजजेन की कटु आलोचना को ठीक समझने के लिये काफ़ी होगा। यह देखने के लिये कि पूँजीवादियों के श्रेणी हितों और उनकी श्रेणी-स्थिति में क्या सम्बन्ध है, पूँजीवाद हर प्रकार के धर्मों को क्या सहायता प्रदान करता है और प्रच-लित दार्शनिक धाराओं के भीतरी विषय क्या हैं, उन बहुसंख्यक

प्रचलित दार्शनिकों को याद कर लेना काफ़ी होगा जो कि योरोपीय देशों में आजकल इतनी बड़ी तादाद में निकलने चले आ रहे हैं। इनमें रेडियम की खोज के सम्बन्ध में निकलक वाले दार्शनिकों से लेकर आइन्स्तीन से नाता जोड़ने वाले तक शामिल हैं।

जो कुछ कहा जा चुका है उससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि ऐसी पत्रिका को जो कि लड़ाकू भौतिकवाद की मुख-पत्रिका बनना चाहती है, आक्रमणात्मक होना चाहिये, पहिले तो इसलिए कि उसे लगातार "पुरोहितवाद के उपाधि-प्राप्त मित्रों" का भण्डाफोड़ करेगी और उन पर हमला करेगी। वह इसका ख़्याल नहीं करेगी कि वे दार्शनिक सरकारी विज्ञानों के प्रतिनिधि की हैसियत से बोलते हैं अथवा स्वतंत्र व्यक्ति की तरह; वे अपने को प्रजातन्त्रवादी वामपत्ती कहते हैं या सिद्धान्तवादी-समाजवादी" प्रकाशक।

दूसरे ऐसी पत्रिका को लड़ाकू अनीश्वरवाद की मुख-पत्रिका बनना पड़ेगा। हमारे पास ऐसे विभाग हैं या कम से ऐसी सरकारी संस्थायें हैं जो कि इस काम को करती हैं। लेकिन यह काम बहुत सुस्ती के साथ और असंतोषप्रद ढंग से हो रहा है। ज़ाहिर है कि हमारे असली रूसी (सोवियत रूसी भी) नौकरशाह उस पर रोक लगाते हैं। इसलिये यह बहुत ज़रूरी है कि योग्य सरकारी संस्थाओं के कामों में मदद देने के लिये उसकी ग़लतियों को दूर करने और उसे आगे बढ़ाने के लिये इस

पत्रिका को, जिसने लड़ाकू भौतिकवाद की मुख पत्रिका बनने का ध्येय अपने सामने रखा है, अनथक अनीश्वरवादी प्रचार और संघर्ष करना चाहिये। इस विषय पर सभी भाषाओं में जितना भी साहित्य है सब का अध्ययन कर डालना चाहिये। उनमें से जिनका इस क्षेत्र में थोड़ा भी मूल्य हो हमें अनुवाद या कम से कम सिंहावलोकन कर डालना चाहिये।

बहुत पहिले ही ऐंजिल्स ने वर्तमान सर्वहारा के नेताओं को यह सलाह दी थी कि अठारहवीं सदी के अन्त में जितना भी लड़ाकू अनीश्वरवादी साहित्य था उसका वे अनुवाद कर दें जिससे कि वह आम जनता में बाँटा जा सके। शर्म की बात है कि हम लोग आज तक ऐसा नहीं कर सके (यह फिर इस बात का प्रमाण है कि क्रान्तिकारी युग में शक्ति अपने हाथों में कर लेना आसान है लेकिन उसको इस्तेमाल करना आसान नहीं)। कभी-कभी "बड़े-बड़े" तर्कों के द्वारा, जैसे अठारहवीं सदी का पुराना अनीश्वरवादी साहित्य बेकाम, अवैज्ञानिक और लग़ो है, इस क्षेत्र की अपनी सुस्ती, काहिली और अयोग्यता को हम क्षमा कर लिया करते हैं। संसार में इस मिथ्या-वैज्ञानिक टाल-मटोल से बढ़कर और ख़राब काम हो नहीं सकता क्योंकि इसी के द्वारा वे अपनी अनबुझपन या मार्क्सवादी-समझ की बिल्कुल कमी को छिपाना चाहते हैं। निस्सन्देह, अठारहवीं सदी के इन क्रान्तिकारी अनीश्वरवादियों के साहित्य में बहुत सी अवैज्ञानिक और लग़ो बातें हैं। लेकिन ऐसी पत्रिकाओं के प्रकाशकों को इन अंशों

को छोटा करने और उन पर नोट लगा देने से जिसमें अठारहवीं सदी के अन्त से आज तक धर्म की वैज्ञानिक आलोचना में प्रगति का पता चल सके, और उधर के लेखों का उद्धरण देने से कोई नहीं रोकता। वह करोड़ों आदमी (खास तौर से किसान और गाँव के मजदूर) जिनको, आज के समाज ने अज्ञान, जिहालत, और मिथ्या-विश्वासों में छोड़ रखा है, शुद्ध मार्क्सवादी शिक्षा की सीधी लकीर के सहारे चलकर अपनी जिहालत से मुक्ति पालेंगे, ऐसा सोचने से बढ़कर दूसरी ग़लती एक मार्क्सवादी कर नहीं सकता। यह ज़रूरी है कि इस जनता को तरह-तरह का अनीश्वरवादी प्रचार साहित्य दिया जाय जिससे वह जीवन के विभिन्न अंगों के बारे में सच-सच बातें जान सके। ऐसे हर प्रकार के रुख का प्रयोग करना चाहिये जिससे उसे इसमें दिलचस्पी पैदा हो सके, धार्मिक नींद से उसे जगाया जा सके और तरह-तरह के ढंगों को अख्तियार करके उसे हरकत और जुम्बिश दी जा सके।

अठारहवीं सदी के पुराने अनीश्वरवादियों के प्राणपूर्ण, विद्वतापूर्ण वे लेख, जिनके द्वारा उस ज़माने के पुरोहितवाद पर चतुराई से और खुला हमला किया गया है, जनता को उनकी धार्मिक नींद से जगाने के लिये मार्क्सवाद के उस निष्प्राण, शुष्क अनुवाद से, जिसमें चुनी हुई सच्ची बातें भी प्रमाण के लिये नहीं रहतीं-ऐसे अनुवादों से ही हमारा साहित्य भरा पड़ा है और (अगर सच कहा जाय तो) इस प्रकार अधिकतर मार्क्सवाद

विकृत ही होता है—हज़ार बार अधिक उचित और काम के साबित होंगे। मार्क्स और एंगिल्स की सभी कृतियाँ, चाहे उनका जितना भी महत्व हो, यहाँ अनूदित हो चुकी हैं। यह डर कि पुराने अनीश्वरवाद और पुराने भौतिकवाद में मार्क्स और एंगिल्स द्वारा बताये गये. परिवर्तनों को शामिल नहीं किया जा सकता, बिल्कुल बेबुनियाद है। सबसे महत्वपूर्ण बात – जिसे साधारण तौर से हमारे तथाकथित मार्क्सवादी कम्युनिस्ट जो कि सचमुच मार्क्सवाद को विकृत करते हैं, भूल जाते हैं, वह है अभी तक पिछड़े हुये लोगों को उभारने के योग्य बनना, जिससे वे समझ-बूझ कर धार्मिक प्रश्नों में और उसकी आलोचना में दिलचस्पी ले सकें।

दूसरी तरफ़, धर्म की मौजूदा वैज्ञानिक आलोचना के प्रतिनिधियों पर निगाह डालिये। सभ्य पूँजीवादियों के ये प्रतिनिधि क़रीब-क़रीब हमेशा धार्मिक धारणाओं के अपने विरोध को उन तर्कों से पूरा करते हैं, जो कि तुरत ही उन्हें पूँजीवादियों के दिमाग़ी ग़ुलाम और "पुरोहितवाद के उपाधि-प्राप्त मित्र" साबित कर देते हैं।

दो प्रमाण लीजिये। १६१८ में प्रोफ़ेसर आर० जे० विपर ने एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसका नाम था "ईसाई धर्म का उदय" (The Rise of Christianity; प्रकाशक "फ़ारोस", मास्को)। वर्तमान विज्ञान की मुख्य सफलताओं का सारांश बताते हुये लेखक चर्च के राजनीतिक संस्था के रूप, उसके मुख्य

अस्त्र मिथ्या धारणाओं और वितन्डावाद से लड़ने से ही बाज़ नहीं रहता, वह इन सवालों से कतरा कर निकल ही नहीं जाता, बल्कि आदर्शवाद और भौतिकवाद के उन्हीं "अतिरेकों" के ऊपर रहने का अपना स्पष्टत: हास्यास्पद और प्रतिक्रियावादी दावा भी पेश करता है। यह उन शासक पूँजीवादियों की गुलामी है जो कि संसार भर में मजदूरों से छीने हुये करोड़ों रुपये धर्म की सहायता में खर्च करते हैं।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान, आर्थर ड्यूज़, अपनी पुस्तक (The Christ Myth) "ईसा-पुराण" में धार्मिक मिथ्या-धारणाओं और भूठे क़िस्सों का भण्डाफोड़ करते हुये साबित करते हैं कि कोई ऐतिहासिक ईसा हुआ ही नहीं; लेकिन अपनी पुस्तक के अन्त में वह धर्म के पक्ष में तर्क उपस्थित करते हैं। पुराने धर्म के पक्ष में नहीं, एक नवोदित, प्रक्षालित धर्म के पक्ष में, ऐसा धर्म जो कि उस प्रकृतिवादी धारा का जो कि दिनों दिन सवल होती जा रही (पृ० २३८, चौथा जर्मन संस्करण १९१०) थी सामाना कर सके। वह एक ऐसे साफ़ सजग प्रतिक्रियावादी हैं जो कि पुराने, गये गुज़रे धर्म के स्थान पर नये अधिक प्यारे और अधिक घृणित मिथ्या धारणाओं को उपस्थित करने में खुलकर पूँजीवादियों की धार्मिक सहायता करना चाहते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि ड्यूज़ की पुस्तक का अनुवाद नहीं होना चाहिये था। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन कम्यु-निस्टों और तमाम संलग्न भौतिकवादियों को, जो कि किसी हद

तक पूँजीवादियों के इस प्रगतिशील अंश से एका किये हुये हैं; चाहिये कि जब वे प्रतिक्रियावादी हो जायँ तो लगातार उनका भण्डाफोड़ करते रहें। इसका अर्थ यह है कि अठारहवीं सदी के पूँजीवादियों—वह काल जबकि पूँजीवादी क्रान्तिकारी थे—और वर्तमान प्रतिनिधियों के साथ एका करने से बाज़ रहना या अलग रहना मार्क्सवाद और भौतिकवाद के साथ ग़द्दारी करना है। ऐसा इसलिये कि किसी भी रूप में, किसी भी हद तक, मौजूदा धार्मिक अंधकार के विरुद्ध संघर्ष में ड्यूज़ से एका करना हमारे लिये आवश्यक है।

'मार्क्सवादी झण्डे के नीचे' पत्रिका को जो कि लड़ाकू भौतिकवाद की मुख पत्रिका बनना चाहती है, अनीश्वरवादी प्रचार और इस विषय के साहित्य की आलोचना में काफ़ी स्थान देना चाहिये, और इस क्षेत्र में हमारी सरकार की ओर से जो बहुत बड़ी-बड़ी कमियाँ रह गई हैं उनको दूर करना चाहिये। उन पुस्तकों और पर्चों को इस्तेमाल करना, जिसमें कितनी ही ऐसी ठोस सच्ची बातें और समानतायें हैं जिनके द्वारा वर्तमान पूँजीवाद के श्रेणी-स्वार्थ और श्रेणी-संगठन और मौजूदा धार्मिक संस्थाओं, धर्म-प्रचार सम्बन्धी संगठनों, की एकता पर रोशनी पड़ती है, विशेष महत्वपूर्ण है।

अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र सम्बन्धी तमाम साहित्य अत्यन्त आवश्यक है, हालाँकि इसके द्वारा सरकार, धर्म और पूँजी के सम्बन्ध पर सब से कम रोशनी पड़ती है। फिर भी, इससे ज्यादा

साफ़ तरह से हम देख सकते हैं कि तथाकथित "वर्तमान पूँजी-वाद" (जिसके आगे मेनशेविक, समाजवादी क्रान्तिकारी और अराजकतावादियों का एक अंग, सभी नत मस्तक हो जाते हैं) इससे अधिक और किसी वस्तु का प्रतिनिधित्व नहीं करता कि पूँजीवाद के लिये जो कुछ भी लाभदायक हो उसके प्रचार की आज़ादी हो। और, पूँजीवादियों के लिये यही लाभदायक है कि अधिक से अधिक प्रतिक्रियावादी विचारों का प्रचार हो—जैसे धर्म, अंधविश्वास शोषकों की रक्षा इत्यादि।

हमें विश्वास है कि वह पत्रिका, जो लड़ाकू भौतिकवाद की मुख पत्रिका बनना चाहती है, हमारी पढ़ने वाली जनता को अनीश्वरवादी साहित्य की समालोचना देगी और यह भी बतायेगी कि पाठकों के किस दल के लिये, किस अनुपात में, कौन सी पुस्तकें आमतौर से उचित होंगी। हम यह भी आशा करते हैं कि वह यह भी बतायेगी कि कौन से अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं (केवल अच्छे अनुवादों को ही बताना चाहिये और उनकी संख्या अधिक है भी नहीं) और कौन से अब भी प्रकाशित होने को रह गयें हैं।

उन संलग्न भौतिकवादियों के साथ जो कम्युनिस्ट पार्टी से सम्बन्धित नहीं है, एकता के अलावा लड़ाकू भौतिकवाद के सामने एक बहुत बड़ा काम और रह जाता है—ऐसा काम जिसका महत्व कम नहीं है, बल्कि शायद सबसे अधिक है—वह है उन प्राकृतिक विज्ञान के वर्तमान प्रतिनिधियों से एका करना

जिनका झुकाव भौतिकवाद की ओर है और जो इसका समर्थन करने से डरते नहीं, जो इसका उपदेश उस आदर्शवाद और सन्देह के प्रति प्रचलित दार्शनिक, अस्थिर विचारों के विरुद्ध भी करते हैं जो कि आज के तथाकथित "शिक्षित समाज" में चालू हैं।

"मार्क्सवादी झण्डे के नीचे" के अंक १-२ में आइन्स्तीन के सम्बन्धवाद के सिद्धान्त (Theory of Relativity) पर लिखा गया ए. तिमिरियासेव का लेख हमें इस बात की आशा दिलाता है कि यह पत्रिका यह दूसरी एकता भी पैदा कर सकेगी। इसकी ओर और भी ज्यादा ध्यान देना चाहिए। इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि वर्तमान प्राकृतिक-विज्ञान में आज जो तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं, उसकी वजह से प्रतिक्रियावादी दार्शनिक स्कूल और धारायें निकलती आ रही हैं। इसलिये उन प्रश्नों का अध्ययन करना बहुत जरूरी है जो कि प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में अभी अभी होने वाली क्रान्ति के कारण सामने आ गये हैं। इस दार्शनिक पत्रिका में इस पर कुछ लिखने के लिये प्राकृतिक-विज्ञान वेत्ताओं को निमंत्रित करना भी बहुत आवश्यक है। जब तक ऐसा नहीं किया जायेगा लड़ाकू भौतिकवाद न लड़ाकू बनेगा न भौतिकवादी। "मार्क्सवादी झण्डे के नीचे" के पहिले अंक में तिमिरियासेव ने यह बताया है कि तमाम देशों के पूँजीवादी बुद्धि जीवियों के अधिकतर प्रतिनिधियों ने आइन्स्तीन के सिद्धान्त पर जोर दिया है, हालांकि (तिमिरिया

सेव के अनुसार) आइन्स्तीन स्वयं भौतिकवाद के सिद्धान्तों का विरोध खुलकर नहीं करते। यह बात आइन्स्तीन ही नहीं, प्राकृतिक-विज्ञान के उन बहुत से सुधारकों के साथ, जिनका आरम्भ काल उन्नीसवीं सदी का अन्त है भी लागू होती है।

लेकिन इसलिये कि ऐसी प्रक्रिया से ग़लत तरीक़े से प्रभावित होने से हम बच सकें; हमें ज़रूर समझ लेना चाहिये कि कोई भी प्राकृतिक विज्ञान, कोई भी भौतिकवाद, पूँजीवादी विचारों के हमलों और पूँजीवादी दर्शन की पुनः स्थापना से सफलता-पूर्वक संघर्ष नहीं कर सकता, जब तक उसके पास भी ठोस दार्शनिक ज़मीन न हो। इस संघर्ष की सहायता करने के लिये और उसे सफलता की सीमा तक पहुँचाने के लिये प्राकृतिक विज्ञान वेत्ता को **आज का भौतिकवादी** बनना होगा—उसे उस भौतिकवाद का सजग अनुयायी बनना होगा, जिसको मार्क्स ने बताया है; अर्थात् उसे द्वन्दात्मक भौतिकवादी बनना होगा। इस काम के सफल होने के लिये "मार्क्सवादी झण्डे के नीचे" के संपादक-मण्डल को भौतिकवादी दृष्टिकोण से—हेगिलवादी द्वन्द्वात्मवाद का अध्ययन अयोजित करना पड़ेगा—अर्थात् उस द्वन्द्वात्मवाद का जिसको मार्क्स ने कैपिटल में लागू किया और जिसे अपनी ऐतिहासिक और राजनीतिक कृतियों में इतनी सफलता से लागू किया कि आज पूर्व के (जापान, हिन्दुस्तान, चीन) लोग पुनर्जीवित हो संघर्ष में लग रहे हैं—ये वह करोड़ों इन्सान हैं जो कि दुनियाँ की आबादी में सबसे अधिक हैं और

जो आज तक अपनी ऐतिहासिक अगतिशीलता और ऐतिहासिक निद्रा के कारण योरोप के बहुत से आगे बढ़े हुये राज्यों में गति-रोध और विनाश की स्थिति बनाये हुये थे। नये लोगों का यह जागरण और नये लोगों का इस प्रकार रोज़ाना और अधिक से अधिक मात्रा में पुनर्जीवित होना मार्क्सवाद के सही होने का सबूत देता है।

निश्चय ही हेगिल के द्वन्द्वात्मवाद का ऐसा अध्ययन, ऐसा अनुवाद और प्रचार अत्यन्त कठिन है और बेशक शुरू में ग़लतियाँ भी होंगी। लेकिन वही लोग ग़लती नहीं करते जो कुछ नहीं करते। जिस तरह मार्क्स ने हेगिलवादी द्वन्द्वात्मवाद की भौतिकवादी विचारशैली को लागू किया, उसीका अनुगमन करके हमें भी प्रत्येक दृष्टिकोण से द्वन्द्वात्मवाद को लागू करना चाहिये। पत्रिका को हेगिल की विशेष कृतियों में से आवश्यक उद्धरण छापना चाहिये; उनका अनुवाद भौतिकवादी ढंग से करना चाहिये, और इस बात का उदाहरण देना चाहिये कि किस प्रकार मार्क्स ने द्वन्दात्मवाद को और उसके मिसालों को आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्धों के क्षेत्रों में लागू किया। वर्तमान इतिहास, विशेषतया वर्तमान साम्राज्यवादी युद्ध और क्रान्ति से इस प्रकार की अनगिनित मिसालें मिल सकती हैं। मेरे विचार से 'मार्क्सवादी झण्डे के नीचे' के संपादकों को "हेगिलवादी दर्शन का भौतिक-वादी मित्र संघ" की तरह का रूप ले लेना चाहिये। आज के प्राकृतिक विज्ञान वेत्ता हेगिलवादी द्वन्दात्मवाद के भौतिकवाद अनु-

वाद में उन दार्शनिक प्रश्नों का हल पायेंगे (अगर वे पाने की कोशिश करें और हम उनकी मदद करना सीखें) जिन्हें प्राकृतिक विज्ञान की क्रान्ति ने सामने ला रखा है और जिनकी वजह से पूँजीवादी प्रचलन के बुद्धिजीवी प्रशंसक प्रतिक्रियावादी गुट में "खिसक" जाते हैं।

जब तक कि हम अपने सामने यह काम न रखें और इसे ढंग से पूरा न करें तब तक भौतिकवाद लड़ाकू भौतिकवाद नहीं होगा। वह लड़ाकू नहीं रहेगा बल्कि (अगर शिदरीं की उक्ति का प्रयोग करें तो) उसके लिये लड़ाई होगी। जब तक कि हम ऐसा नहीं करेंगे प्राकृतिक विज्ञान के महान अन्वेषक अपने दार्शनिक नतीजों और साधरणी करण में उतने ही असहाय रहेंगे, जैसा कि अब तक वे रहे हैं। प्राकृतिक-विज्ञान इतनी तेज़ी से आगे बढ़ रहा है, और प्रत्यक्ष रूप में इतने सम्पूर्ण क्रान्ति के काल से गुज़र रहा है कि हम दार्शनिक नतीजों के निकालने से बाज़ रह कर काम ही नहीं चला सकते" ....।

५

धर्म है किस काम का ?

पाठकों को शायद वह हलचल याद होगी जो कि ओरेल सूबे के अमीरों के मार्शल एम. ए. स्ताखोविख के एक धार्मिक महासभा के उस भाषण के द्वारा पैदा हो गई थी, जिसमें उन्होंने यह माँग की थी **आत्मा की स्वतन्त्रता** को क़ानून की ओर से मानता मिलनी चाहिये। 'मास्कोविस्की वेदो मोस्ती' पत्र के नेतृत्व में कट्टरपन्थी प्रेस स्ताखोविख के खेलाफ़ भयानक आन्दोलन कर रहे हैं। गालियाँ देने के लिये इनके पास जैसे काफ़ी शब्द ही नहीं रह गये हैं। वे एम. स्ताकोविख को अपना मार्शल फिर से चुनने के कारण ओरले के तमाम अमीरों के ऊपर ग़द्दारी करने का का जुर्म लगाते हैं। अब यह पुनर्निर्वाचन बहुत महत्वपूर्ण हो गया है और किसी हद तक पुलिस के ज़ुल्मों और अत्याचारों के विरुद्ध अमीरों द्वारा प्रदर्शन का रूप इसने ले लिया है।

'मास्कोविस्की वेदो मोस्ती' कहता है, "स्ताखोविख अमीरों के मार्शल होने के कारण उतने प्रसिद्ध नहीं हैं जितने कि हँसोड़ मिशा स्ताखोविख की हैसियत से, मित्रमण्डल को पुरलुत्फ़ बनाने वाले उस व्यक्ति की हैसियत से जिसे ग़पें मारने का वरदान मिला है,',

(१९०१, नं० ३४८)*। महाशयों, यह आपके लिये, मोटे डन्डे के प्रतिपादकों के लिये, सबसे ख़राब बात है। जब आपके हँस-मुख ज़मीदार आत्मा की स्वतन्त्रता की बात करने लगे हैं, तब निश्चय ही पुरोहितों और पुलिस के घृणित काम प्रत्येक सीमा को लाँघ चुके हैं।......स्ताख़ोविख़ों की प्रशंसा करने वाले, हल्के दिलो-दिमाग़ वाली इस बुद्धि जीवी भीड़ को हमारे पवित्र कट्टर-पंथी चर्च और उसके प्रति हमारी युग-सम्मानित धारणा की क्या परवाह! महाशयो, एकतन्त्रवाद, कट्टर चर्च और राष्ट्रीयतावाद के प्रतिपादको—एक बार फिर यह आपके लिये बहुत बुरी बात है। सचमुच, हमारा वह पुलिस-प्रभावित एकतन्त्रवाद अत्यन्त सुन्दर व्यवस्थां है जिसमें धर्म में भी जेल की भावना को भर दिया गया है और इस हद तक कि "स्ताख़ोविख़" (जिनकी कोई भी स्थिर धार्मिक धारणायें नहीं हैं, लेकिन जो कि—जैसा कि हम देखेंगे, धर्म को क़ायम रखने में दिलचस्पी रखते हैं) इस बदनाम "राष्ट्रीय-धर्म" के प्रति बिल्कुल उदासीन हो जाते हैं (अगर वे उसे सचमुच घृणा नहीं करते तो)।......'इस मिथ्या धारणा' को धन्यवाद कि हम डरते हैं और पाप करने से बच जाते हैं,

---

*इन वाक्यों को उस लेख से लिया गया है जिसका नाम है "मि० स्ताख़ोविख़ के लिये ज़िम्मेदार कौन है?" इस पर ए. पी. जी. का हस्ताक्षर था और यह मास्कोविस्की वेदो मोस्ती, दिसम्बर १८, १९०१ में प्रकाशित हुआ था।

और अपने काम बिना किसी शिकायत के करते जाते हैं, चाहे वे कितने भी कठिन क्यों न हों। ऐसा इसलिये कि हम अफ़सोस और कष्ट को बर्दाश्त करने की शक्ति अपने में पाते हैं और सफलता और सौभाग्य के समय घमन्ड नहीं करते.....।" तो यह ऐसा ही है, न ? उनको कट्टर चर्च प्यारा है। क्योंकि वह उन्हें दुर्दिन के कष्टों को "बिना किसी शिकायत के" बर्दाश्त करना सिखाता है। कितना लाभकारी धर्म यह है, निश्चय ही—शासक वर्गों के लिये ! एक ऐसे समाज में जिसमें एक नन्हा-सा अल्पमत समृद्धि और सुख भोगता है और जनता लगातार "कष्टों" को भोगती है और "कठोर ज़िम्मेदारियों" को निभाती है। शोपकों के लिये बिल्कुल स्वाभाविक है कि वे उस धर्म के साथ सहानुभूति दिखायें जो इस पृथ्वी के नर्क की यातनाओं को "बिना किसी शिकायत के" इस आशा से बर्दाश्त करने की शिक्षा देता है कि मृत्यु के उपरान्त तथाकथित स्वर्ग मिलेगा। लेकिन अपने जोश में मास्को विस्की वेदो मोस्ती अत्यधिक मुँहफट हो जाता है। इतना मुँह फट हो जाता है कि वह अपनी बेवकूफ़ी से सच्ची बात भी कह देता है। आगे सुनिये"......वे यह नहीं समझते कि इसी 'मिथ्या धारणा' के कारण वे स्ताखोविख के साथी, अच्छी तरह खाते हैं, शान्ति से सोते हैं और आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।"

यह एक पवित्र सत्य है। निश्चय ही, ऐसा है भी। जनता के अन्दर फैली हुई, मिथ्या धारणा का ही यह नतीजा है कि स्ताखो-

त्रिख के साथी और आबलोमोव* शान्तिपूर्वक सो पाते हैं और साथ ही हमारे वे तामाम पूँजीपति भी जो कि इस जनता की मेहनत पर जीवित रहते हैं। और, इसी प्रकार मास्कोविस्की वेदो मोस्ती भी। जितना ही धार्मिक धारणाओं का स्थान समाजवादी चेतना लेती जायेगी उतना ही नजदीक सर्वहारा के विजय के दिन आते जायेंगे—वह विजय जो कि आज के समाज की गुलामी बर्दाश्त करने वाली तमाम पीड़ित जनता को मुक्ति दिलायेगी…।

इस्क्रा, नं० १६, फ़रवरी १५, १६०२

---

*गोन्चारोव के उपन्यास का इसी नाम का काहिल नायक।

लियो ताल्स्ताय-रूसी क्रान्ति के दर्पण के रूप में

इस महान लेखक का नाम उस क्रान्ति के साथ जोड़ना जिसे, जैसा कि ज़ाहिर है, वह समझता नहीं था और जिससे दूर ही वह रहता था, पहिली नज़र में अद्भुत और बनावटी मालूम पड़ सकता है। निस्सन्देह कोई भी वस्तु अगर किसी प्रक्रिया का ठीक-ठीक प्रतिच्छाया नहीं देती, तो उसे हम दर्पण नहीं कह सकते ? लेकिन हमारी क्रान्ति स्वयं एक असाधारण और उलझी हुई प्रक्रिया है। इस क्रान्ति में सीधे काम करने वालों और उसमें भाग लेने वालों में बहुत से ऐसे सामाजिक लोग हैं जो यह नहीं समझते कि क्या हो रहा है और उन्होंने उन ऐतिहासिक कार्यों को भी छोड़ दिया है; जिनको घटनाओं ने उनके सामने ला रखा। और, एक सत्यमेव महान लेखक क्रान्ति की ज़रूरी रूपों की प्रतिच्छाया दिये बिना रह नहीं सकता।

क़ानूनी रूसी प्रेस, जो कि ताल्स्ताय को अस्सीवें वर्षगाँठ पर लेखों, पत्रों और नोटों से भरा हुआ था, रूसी क्रान्ति की रूप-रेखा और उसकी प्रणेता शक्तियों के विश्लेषण में दिलचस्पी नहीं रखता। सारा का सारा प्रेस घृणित ढोंग से भरा पड़ा है—यह ढोंग

दो प्रकार का है—"सरकारी" और "उदार"। पहिला तो किराये के लेखकों का कुघड़ ढोंग है जो कि कल तक ताल्स्ताय पर हमले करने पर तुला था, और जो आज ताल्स्ताय में देशभक्ति खोज निकालने पर तुला हुआ है और योरोप की नज़रों में औचित्य के सभी नियमों को उसके प्रति पालने में लगा हुआ है। हर आदमी जानता है कि इन लेखकों को पैसे मिले हैं और ये किसी को धोखा नहीं दे सकते। लेकिन यह उदारवादी ढोंग बहुत अधिक पैना है और इसलिये बहुत अधिक नुक़सान पहुँचाने वाला और खतरनाक है। रेख के केडेट वालालायकिन्स की बात सुनकर यह धारणा उत्पन्न हो सकती है कि ताल्स्ताय के लिये उनकी सहानुभूति ज़ोरदार और पूर्ण है। सचमुच में "इस महान ईश्वर अन्वेषक" के बारे में उनके सोचे-विचारे भाषण और बड़े-बड़े वाक्यांश बिल्कुल ढोंग से भरे हैं क्योंकि रूस का उदारपंथी न तो ताल्स्तावादी-ईश्वर में विश्वास करता है, न मौजूदा व्यवस्था की ताल्स्तायवादी आलोचना के साथ सहानुभूति रखता है। वह अपने को एक प्रचलित नाम के साथ इसलिये शामिल करता है कि उसकी राजनैतिक पूँजी बढ़े—वह राष्ट्रीय-विरोध के नेता का रोल अदा कर सके। वह कोशिश करता है कि जोशीले और ज़ोरदार जुमलों के नीचे इस प्रश्न के सीधे और स्पष्ट उत्तर को दबा दे कि ताल्स्तायवाद में ये स्पष्ट असंगतियाँ कैसे पैदा होती हैं। उनमें हमारी क्रान्ति की किन कमियों और कमज़ोरियों की छाया मिलती है?

ताल्सतायवादी स्कूल की कृतियों, विचारों और शिक्षाओं की असंगतियाँ सचमुच अत्यन्त स्पष्ट असंगतियाँ हैं।

एक तरफ़ वह महान लेखक है जो कि रूसी जीवन का अद्वितीय चित्र ही उपस्थित नहीं करता बल्कि पहिले दर्जे का विश्वसाहित्य पैदा करता है। दूसरे तरफ़ वह जिमीदार है जो ईसा-मसीह के नाम पर शहीद का ताज पहिने हुये है।

एक तरफ़—सामाजिक झूठों और ढोंगों का अत्यन्त मज़बूत, सीधा और सच्चा विरोध है। दूसरे तरफ़ ताल्सतायवादी अर्थात् निष्प्राण, पागलपन की सीमा तक पहुँचा हुआ, ग़रीबी के नारे लगाने वाला रूसी बुद्धिजीवी है जो कि आम लोगों के सामने अपनी छाती पीट-पीट कर कहता है, "मैं बुरा हूँ, मैं गन्दा हूँ, परन्तु मैं नैतिक आत्म-शुद्धि के लिये यत्नशील हूँ; अब मैं गोश्त नहीं खाता, अब मैं चावल के कटलेट ही खाकर रह जाता हूँ।"

एक तरफ़ पूँजीवादी शोषण की घोर आलोचना है, सरकारी हिंसा, न्याय के नाटक और सरकारी व्यवस्था का भण्डा-फोड़ है; धन की बढ़ती और सभ्यता की सफलताओं और ग़रीबी की बढ़ती और श्रमजीवी जनता पर ज़ुल्म और ज़्यादती के बीच की असंगतियों की गहराइयों का उद्घाटन करना है; दूसरी तरफ़ "बुराइयों के अविरोध" की पागलपन से भरी हुई शिक्षा है।

एक तरफ गंभीरतम तथ्यवाद है और हर तरह के पर्दों का उद्घाटन है; दूसरी तरफ़ संसार में मौजूद सबसे घृणित वस्तु

धर्म की वकालत है, सरकारी पुरोहितों के स्थान पर आचार और नीति में विश्वास रखने वाले पुरोहितों को ला बिठाना है अर्थात् इस प्रकार सबसे पैना और इसलिये सबसे कर्षित प्रकार का पुरोहितवाद है।

सत्य में,

तुम ग़रीब हो; तुम समृद्धि शालिनी हो,

तुम शक्ति शालिनी हो; तुम असहाय हो,

माँ रूस*

इन असंगतियों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि तालस्ताय न तो मज़दूरों का आन्दोलन और न समाजवाद के लिये संघर्ष में उसके रोल को समझ सका, न रूसी क्रान्ति को। लेकिन तालस्ताय ही शिक्षाओं और विचारों की ये असंगतियाँ आकस्मिक नहीं हैं, यह उन्नीसवीं सदी की अन्तिम तिहाई में रूसी जीवन की असंगतियों की अभिव्यंजना है। पितृसत्तावादी गाँव जो कि अभी अभी ग़ुलामी से मुक्त हुये थे, पूँजी और राज्य के हाँथों में हिंसा और लूट के लिये दे दिये गये। किसान अर्थ-व्यवस्था और किसान जीवन की पुरानी नींव जिसने अपने को सचमुच सदियों तक जीवित रखा था, असाधारण गति से टूट गया। और, तालस्तायवादी विचारों की असंगतियों का मूल्यांकन आज के मज़-

*नेक्रासाव की कविता "Who Lives Well In Russia" से उद्धृत।

दूर आन्दोलन और आज के समाजवाद के दृष्टिकोण से नहीं करना चाहिये (ऐसा मूल्यांकन, निस्सन्देह आवश्यक है परन्तु इतना ही सब कुछ नहीं है) बल्कि इसका मूल्यांकन उस विरोध के दृष्टिकोण से करना चाहिये जो कि पितृसत्तावादी गाँवों की ओर से पूँजीवाद के हमले के खिलाफ़ उठा, जो कि जनता की बर्बादी और जमीन पर से उनकी बेदखली के खिलाफ़ उठा। मानवों की मुक्ति के लिये नुसखे खोज निकालने वाला पैग़म्बर तालस्ताय हास्यास्पद हो गया है—इसलिये वे रूसी और विदेशी "तालस्ताय-वादी" जो कि उसकी शिक्षा के इस सबसे कमजोर पक्ष को रूढ़ि बना देना चाहते हैं, नितान्त घृणित हैं।

तालस्ताय महान है क्योंकि उसकी कृतियों में रूस में पूँजीवादी क्रान्ति के बढ़ने के साथ करोड़ों रूसी किसान जनता में उठने वाले विचारों और भावों की अभिव्यंजना है; तालस्ताय मौलिक है क्योंकि उसके विचार, कुल मिलाकर क्षति पहुँचाने वाले होते हुये भी, अपने इसी कुल जोड़ से हमारी क्रान्ति—किसान—पूँजीवादी क्रान्ति की विशिष्ट विशेषताओं का ठीक-ठीक बताते हैं। ऐसा समझ लेने पर पता चलता है कि तालस्ताय के विचारों की असंगतियाँ उन असंगतिपूर्ण ऐतिहासिक दशाओं की छाया हैं जिनमें हमारी क्रान्ति में शामिल होने वाले किसानों के कार्य बँधे हुये थे। एक तरफ़, सदियों के सामन्तवादी ज़ुल्मों और दशाब्दियों के उत्तर-सुधार काल की तेजी से बढ़ती हुई बर्बादियों* में घृणा, क्रोध,

---

*अर्थात् ग़ुलामों की मुक्ति जिसने सचमुच किसानों को बर्बाद कर दिया।

और निश्चयात्मक दृढ़ता के अम्बार लगा दिये थे। सरकारी चर्च, ज़िमीदार और ज़िमीदारी सरकार को बहा ले जाने वाले, प्रयत्न—ज़मीन की मिल्कियत के सभी पुराने रूपों और व्यवस्थाओं को समाप्त करने—ज़मीन को आज़ाद कराने—पुलिस श्रेणी की सरकार के स्थान पर छोटे किसानों के स्वतन्त्र और बराबरी के आधार पर बनी हुई सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के प्रयत्न, हमारी क्रान्ति में किसानों द्वारा बढ़ाये हुये प्रत्येक ऐतिहासिक क़दम में एक डोरी की तरह है! और निश्चय ही, ताल्स्ताय के लेखों के सिद्धान्त सम्बन्धी विषय, कोरे "ईसाई अराजकतावाद" से जिसको उसके विचार सम्बन्धी दृष्टिकोण से निकालकर एक "व्यवस्था" का रूप दिया गया है, कहीं ज़्यादा अधिक सम्बन्ध, किसानों के इस संघर्ष से रखते हैं।

दूसरे तरफ़ सामाजिक जीवन के नये रूप की ओर बढ़ने की कोशिश करते समय किसान जैसा सामाजिक जीवन चाहते हैं उसकी, अपनी आज़ादी प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार के संघर्ष की आवश्यकता है उसकी, इस संघर्ष में जिस प्रकार के नेताओं की आवश्यकता है उसकी, पूँजीवादी और पूँजीवादी बुद्धिजीवी किसान क्रान्ति के प्रति कैसा रुख रखेंगे उसकी, और क्यों बड़े ज़िमीदारों के हाँथ से ज़मीन छीन लेने के लिये ज़ार की शक्ति को क्रान्ति के द्वारा समाप्त करना एक आवश्यक भूमिका है, उसकी, एक बेहद धुँधली, पितृ सत्तावादी—धार्मिक धारणा उनमें थी। किसानों के सारे पिछले जीवन ने उन्हें ज़िमीदारों और सरकारी

अफ़सरों को घृणा करना सिखाया था, लेकिन उनको यह नहीं बताया था, न बता सकता था कि अपने सवालों को हल करने के लिये वे जाँय किसके पास। हमारी क्रान्ति में एक हद तक किसानों की एक अल्पसंख्या ने ही सचमुच हिस्सा लिया और क्रान्ति के लिये संगठन किया। और, अपने शत्रुओं के लिये ज़ारशाही के साथियों और ज़मीदारों के रक्षकों को खत्म करने के लिये उन किसानों के एक बहुत छोटे से हिस्से ने हथियार उठाये। अधिकतर किसान रोये और प्रार्थनायें कीं, नीति की बातें कहीं और सपने देखे, प्रार्थना पत्र लिखे, और लियो निकोलाईविख ताल्स्ताय की भावना के अनुसार ही "प्रार्थना करनेवाले" भेजे!

और, जैसा कि हमेशा ऐसे मामलों में होता है राजनीति से ताल्स्तायवादी निवृत्ति, राजनीति से ताल्स्तायवादी सम्बन्ध-विच्छेद, राजनीति से उदासीनता और राजनीति की नासमझकारी—इन सबका नतीजा यह हुआ कि केवल एक अल्पमत ने ही सजग क्रान्तिकारी सर्वहारा का साथ दिया और बहुसंख्यक किसान बिना किसी सिद्धान्तवाले, छोटे क़िस्म के उन पूँजीवादी बुद्धिजीवियों के चक्कर में फंस गये जो कि केडेट होते हुये त्रुदोविकों की सभा से भाग निकले, जिन्होंने समझौता कर लिया और समझौता करने का वादा तब तक करते रहे जब तक कि वे हमेशा के लिये सिपाहियों के बूटों की ठोकर खाकर निकाल नहीं दिये गये।

ताल्स्तायवादी विचार हमारे किसान बग़ावत की कमज़ोरियों और कमियों का दर्पण है, वह पितृ-सत्तावादी गाँव की अदृढ़ता

और "कंजूस मजिक" (रूसी किसान) की स्वभावगत कायरता की प्रतिच्छाया है।

१६०५-१६०६ के बागियों का उदाहरण लीजिये। सामाजिक दृष्टि से हमारी क्रान्ति के ये लड़ाके किसान और सर्वहारा के बीच के थे। चूँकि सर्वहारा अत्यन्त अल्पमत में थे इसलिये फ़ौज के भीतर का आन्दोलन रूस भर की पूर्ण एकता के स्तर तक कभी न उठ सका, अथवा उसकी पार्टी-श्रेणी-सजगता उस तरह की न हो सकी जैसा कि वह सामाजिक प्रजातन्त्रवादी होने के बाद हो गई; जैसे किसी ने एक बार हाथ फेर दिया। दूसरे तरफ़ इससे ज्यादा ग़लत और दूसरी राय हो नहीं सकती कि बग़ावत में हार इसलिये हुई कि अफ़सरों ने उनका नेतृत्व नहीं किया।

इसके उल्टे, नरोद्नाया वोल्या के समय से आज तक की क्रान्ति की महान प्रगति ठीक इस बात में दिखाई पड़ती है कि "अब उन जानवरों" ने जिनकी आज़ादी ने उदार पंथी ज़िमीदारों और उदारपंथी अफ़सरों को इतना डरा दिया था, अपने अफ़सरों के विरुद्ध हथियार उठाये। सिपाही किसानों के हितों से पूरी सहानुभूति रखते थे; ज़मीन के नाम पर उनकी आँखें चमक उठती थीं। फ़ौज में कितनी बार सिपाहियों ने पेशक़दमी की थी—लेकिन इस शक्ति का कोई भी दृढ़ प्रयोग अमल में नहीं लाया गया।

सिपाही हिचकिचाये। कई दिनों बाद—कभी-कभी कई घन्टों बाद—एक घृणित सेनापति को मार कर उन्होंने दूसरों को छोड़

दिया, अधिकारियों से समझौते की बात-चीत की और चुपके से मौत के घाट उतर गये अथवा कोड़े के आगे अपने शरीर को झुका दिया, जुये में फिर एक बार अपना कंधा जोत दिया और यह सब हुआ लियो निखोलाईविख तालस्ताय की भावना के अनुसार !

तालस्ताय में बटुरी हुई घृणा, आधे जीवन के लिये थकी हुई आकाँक्षा, बीते को छोड़ फेंकने की इच्छा दिखाई पड़ती है—और साथ ही, अपरिपक्वता, स्वप्नवादी चिन्तनात्मकता, राजनैतिक अनुभवहीनता और गाँवों की क्रान्तिकारी अदृढ़ता भी। ऐतिहासिक—आर्थिक दशायें बताती हैं कि जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष का उभरना अनिवारणीय है। वे यह भी बताती हैं कि संघर्ष के लिये जनता तैयार नहीं है। बुराई के प्रति उस तालस्तायवादी अविरोध को भी वे बताती हैं जो कि पहिले क्रान्तिकारी आन्दोलनों की असफलता का सबसे मुख्य कारण है।

कहा जाता है कि हारी हुई सेनायें ही सबसे अधिक सीखती हैं। निश्चय ही, एक क्रान्तिकारी श्रेणी और सेना में मुक़ाबिला एक छोटे से हद तक ही किया जा सकता है। पूँजीवाद की विश्रृंखलता उन दशाओं को, जिसने कि सामन्तवादी ज़मीदारों और उनकी सरकार के प्रति घृणा के कारण एक हुये करोड़ों किसानों को क्रान्तिकारी-प्रजातन्त्रवादी संघर्ष में ढकेल दिया, घन्टों में बदलती और घन्टों में तेज़ करती है। खुद किसानों के बीच भी विनिमय की उन्नति, बाज़ार के असर और रुपये की

शक्ति पितृसत्तावाद और उसके साथ ही दार्शनिक*
विचारधारा को हटाती जा रही है। लेकिन क्रान्ति के प्रथम वर्षों
और जन-क्रान्तिकारी संघर्ष की पहली हारों में निश्चय ही एक
सफलता मिली। उन्होंने जनता के एक समय की मुलायमियत
और अदृढ़ता को मरणान्तक आघात पहुँचाया। बिलगाव की
रेखायें स्पष्टतर हो गई। श्रेणियों तथा पार्टियों के लिये सीमायें
निर्धारित हो गई। स्तोलिपिन के शिक्षात्मक हथौड़े के नीचे,
सामाजिक प्रजातन्त्रवादियों के पथारुढ़, संलग्न आन्दोलन के
के ज़रिये, केवल समाजवादी सर्वहारा के भीतर से ही नहीं,
किसानों की प्रजातन्त्रवादी जनता के भीतर से भी, निश्चय
ही, अधिक से अधिक तपे हुये लड़ाके निकलेंगे जिनकी हमारे
ताल्स्तायवादी ऐतिहासिक पाप के गढ़े में गिरने की सम्भावना
कम से कम होगी।

—प्रालीतारी, नं० ३५, ११ (२४) सितम्बर १९०८

---

*पाण्डुलिपि में ताल्स्तायवादी

७

ए० यम० गोर्की को दो पत्र*

(१)

प्रिय अलेक्सी मैक्सिमोविख !

तुम करने क्या वाले हो ? यह एकदम भयंकर है ! सचमुच !

कल मैंने रीख़ में दास्त्योविस्की के बारे में उठे "शोर गुल" का तुम्हारा उत्तर पढ़ा और उसका आनन्द लेने ही वाला था; लेकिन आज (Liquidationist) अख़बार पहुँचा। उसमें तुम्हारे लेख का यह एक पैरा था जो कि रीख़ में नहीं छपा था :

---

*"रस्कोई स्लोवो" (रूसी शब्द) नं० २१६, अक्तूबर ५ (सितम्बर २२), १६१३, के अंक में ए० यम० गोर्की का 'कारामाज़ाव घटना" (The Karamazov Episode) नाम का एक लेख छपा था, जिसमें दोस्त्योवित्स्की के प्रतिक्रियावादी उपन्यास देव (Devils) को नाटक का रूप देकर 'मास्को कला भवन' (Moscow Art Theatre) में खेले जाने का विरोध किया गया था। इसी लेख की वजह से लेनिन ने यह पत्र लिखा। पूँजीवादी अख़बारों और लेखकों के एक महत्वपूर्ण गुट ने खुल्लमखुल्ला गोर्की का विरोध किया और लेनिन के शब्दों में दोस्त्योवित्सकी के समर्थन में "शोरगुल" मचाया। 'फ़िनान्शल-न्यूज़" के शाम के संस्करण में यह छपा। गोर्की ने अपने नये लेख-"कारामाज़ोव घटनाफिर" में उसका उत्तर दिया। यह रस्कोई स्लोवो नं० २४८ नवम्बर ६ (अक्टूबर २७) में छपा। गोर्की के उत्तर के बड़े बड़े अंश रीख़

"लेकिन "ईश्वर की खोज"❀ इस समय के लिये बन्द कर

नवम्बर १० (अक्टूबर २८) में छपे, इसमें लेनिन के नवम्बर ११(अक्टूबर २६) वाले पत्र में उधृत पैरा नहीं छपा था। गोर्की का सारा लेख फिर से नोवाया राबोचाया गाज़ेटा (नवश्रमिक पत्र) नं० ६६, नवम्बर ११ (अक्टूबर२६) में छपा। लेनिन ने गोर्की के लेख पर तीन पत्र लिखे। उनमें से एक पत्र छोटा सा था जिसमें केवल कुछ पंक्तियाँ थीं। दूसरे दो पत्रों की तरह यह पत्र भी लेनिन-संग्रह १ पृ० १४५-१५१, में शामिल है। संपादकों ने संग्रहीत ग्रन्थों में उसे नहीं छापा। पहिला पत्र, जिसमें लेनिन ने गोर्की के ईश्वर-उत्पादन का विरोध किया है, पूरा-पूरा छपा है। दूसरा पत्र जो कि इस ग्रंथ में छपा है पाँचवे पन्ने से शुरू होता है। संग्रहीत ग्रंथों के संपादकों के पास बाक़ी चार पन्ने न थे। ज़ाहिर है कि यह पत्र गोर्की के उस पत्र के उत्तर में लिखा गया है जो कि उन्होंने लेनिन की आलोचना के बाद लिखा था।

जब "कारामाज़ाव घटना फिर" लेख १६०५ से १६१६ के लेखों के संग्रह में "वारस" (पेट्रोग्रेड १६१८) द्वारा फिर से प्रकाशित किया गया तो, गोर्की ने ईश्वर-उत्पादन वाले अन्तिम पैराग्राफ़ को, जिस पर लेनिन का "आक्रोश पूर्ण" आक्रमण हुआ था, निकाल दिया।

पहिले पत्र के अन्त में जिस उपन्यास का चर्चा हुआ है उसे वी. वोईतिन्स्की (उपनाम सी. पेत्राव) ने लिखा था। यह उपन्यास प्रोस वेशेनिये (Prosveshcheniye) के संपादक-मंडल के पास भेजा गया था। गोर्की ने उसे अपनी अनुमनित नहीं दी!

❀प्रतिक्रिया के ज़माने में बोलशेविकों का एक भाग, जिसमें लूनाचारस्की और गोर्की प्रधान थे, धार्मिक आवेगों के आगे झुक गया और उसने एक दर्शन का प्रतिपादन किया जिसका नाम "ईश्वर की खोज" या "ईश्वर का उत्पादन" था।

देनी चाहिये (क्या केवल इस समय के लिये ?) यह बेकार काम है। ऐसे चीज़ को खोजना जो छिपा नहीं है बिल्कुल बेकार है। बिना बोये तुम काट नहीं सकते। तुम्हारा कोई ईश्वर नहीं है। तुमने अभी तक (अभी तक !) उसका निर्माण नहीं किया है। ईश्वर की खोज नहीं की जाती—**वे बनाये जाते हैं;** जीवन खोज नहीं करता, वह निर्माण करता है।"

तो, ऐसा लगता है कि तुम "ईश्वर की खोज" के विरोधी केवल इस समय के लिये हो ! तब, ऐसा मालूम होता है कि तुम ईश्वर की खोज के विरोधी केवल इसलिये हो कि उसकी जगह पर ईश्वर निर्माण किया जाय !!

अब ! क्या ऐसा सोचना कि तुम इस प्रकार के तर्क देते हो भयावह नहीं है ?

ईश्वर अन्वेषण और ईश्वर निर्माण, ईश्वर-उत्पत्ति आदि में उतना ही अन्तर है जितना पीले और नीले देव में है। ईश्वर की खोज की बात करना, इसलिये नहीं कि तमाम देवों और ईश्वरों का विरोध करना है, तमाम विचारधारा सम्बन्धी लाशों की पूजा का विरोध करना है, (प्रत्येक छोटे ईश्वर को, चाहे वह पावनतम और बिल्कुल आदर्श ही क्यों न हो, खोजकर निकालना नहीं बल्कि दिमाग़ में सोचना भी लाश की पूजा करना है)—बल्कि केवल नीले देव और पीले देव में चुनना है—यह उसके बारे में बिल्कुल न बोलने से सौगुना बुरा है।

ऐसे देशों में जो अधिक से अधिक स्वतन्त्र हैं, जहाँ प्रजा तन्त्र, जनता, लोगों के विचारों और विज्ञान से अपील करना बिल्कुल अनावश्यक है—ऐसे देशों में जैसे अमेरिका, स्वीटजर लैण्ड आदि, जनता और मजदूरों का दिमाग़ इसी पवित्र, आध्यात्मिक छोटे ईश्वर के विचार से ही मूढ़ बन जाते हैं। इसीलिये तमाम धार्मिक विचार, किसी भी छोटे ईश्वर के लिये तमाम धारणायें, यहाँ तक कि एक छोटे से ईश्वर के साथ चुहुल करना भी अकथनीय घृणास्पद कार्य है और यह वही कार्य है जिसे विशेष प्रकार से प्रजातन्त्रवादी पूँजीवादी बर्दाश्त करते हैं (अधिकतर चाहते भी हैं) ठीक इसलिये कि यह सबसे ख़तरनाक घृणित काम है, सबसे अधिक गर्हित "छूत की बीमारी है।" लाखों शारीरिक पापों, गन्दे धोखों, हिन्सा और ज़हरों की बात लोग आसानी से समझ जाते हैं। इसलिये, यह उस छोटे ईश्वर की पैनी आध्यात्मिक धारणा से, जिसे चुस्त से चुस्त सैद्धान्तिक जामा पहिना कर आगे रखा जाता है, कम ख़तरनाक है। एक कैथोलिक पुरोहित जो कि जवान लड़की का चरित्र भ्रष्ट करता है (जिसके बारे में मैंने आज अभी एक जर्मन अख़बार में पढ़ा है) प्रजातन्त्रवाद के लिये उन पुरोहितों से कहीं कम ख़तरनाक है जो सुफ़ेद धार्मिक कपड़े नहीं पहिनते, जिनका धर्म भोंड़ा नहीं है, जो सिद्धान्तवादी और प्रजातन्त्रवादी हैं, जो छोटे ईश्वर के पैदा करने और बनाने का उपदेश देते हैं। पहिले तरह के पुरोहितों का भण्डा-फोड़ आसानी से किया जा सकता है। उनकी भर्त्सना की जा सकती

है, और वे भगाये जा सकते हैं—लेकिन दूसरे इतनी आसानी से नहीं भगाये जा सकते। उनका भण्डा-फोड़ करना हज़ार गुना ज़्यादा कठिन है, क्योंकि एक भी "कमज़ोर और करुणा जनक अशक्त" मामूली आदमी उनकी "भर्त्सना" करने के लिये तैय्यार न होगा।

और तुम, आम रूसी व्यक्तियों (रूसी ही क्यों ? क्या इतालियन उससे अच्छे है ?) की "कमज़ोरियों और करुणा जनक अशक्तता" को जानते हुये भी उन्हें आकर्षक मालूम पड़ने वाली, भड़कीली पन्नी में लिपटी हुई मिठाई, जिसके मीठे ऊपरी हिस्से के भीतर प्राण ले लेने वाला ज़हर मौजूद है, देकर चकित और भ्रान्त करना चाहते हो।

सचमुच, यह भयंकर बात है!

"अब तो आत्म-प्रताड़ना की, जिसने जहाँ तक हम लोगों का सम्बन्ध है, आत्म-आलोचना का स्थान ले लिया है, हद हो चुकी है।"

ईश्वर निर्माण आत्म प्रताड़ना का सबसे भद्दा रूप नहीं है क्या ? प्रत्येक वह आदमी जो ईश्वर के निर्माण में लगा है अथवा उसके बारे में विचार ही कर रहा है, बुरे से बुरे रूप में आत्म-प्रताड़ना कर रहा है, क्योंकि अपने को "कार्यों" में लगाये रहने के बजाय वह आत्म चिन्तन और आत्म प्रशंसा में लगा रहता है, और इससे बढ़कर सबसे गन्दा, सबसे अधिक बेवकूफ़ी से भरा, अपनी "प्रवंचना" के सबसे घृणित रूपों को आत्म प्रेम

द्वारा गौरव देकर अपने द्वारा निर्मित ईश्वर में परिणत करने का "विचार" करता है।

सामाजिक और अव्यक्तिगत दृष्टिकोण से तमाम ईश्वर निर्माण सुस्त, कमज़ोर आम लोगों का पूजा वृत्ति वाला आत्म-चिन्तन है—यह निराश, थके हुये आम आदमी और निम्न मध्यम श्रेणी के लोगों की स्वप्नवादी "आत्म प्रताड़ना" है (जैसा कि तुमने आत्मा के बारे में बिल्कुल ठीक कहा है—केवल, तुम्हें "रूसी" आत्मा नहीं बल्कि निम्न मध्यम श्रेणी के लिये कहना चाहिये था क्योंकि यहूदी, इतालियन और अँग्रेज़ निम्न मध्यम श्रेणी के सभी लोग एक तरह के हैं)। सड़ा हुआ संकुचित दृष्टिकोण हमेशा घृणित होता है, लेकिन "प्रजातन्त्रवादी संकुचित दृष्टिकोण जो कि विचार धारा सम्बन्धी लाश-पूजा में लगा हुआ है, विशेष रूप से घृणित है।

तुम्हारे लेख को ध्यान से पढ़कर यह पता लगाने की कोशिश करने पर कि यह ग़लती कैसे हो गई, तुम से मैं मान लेता हूँ कि मुझे अफ़सोस हुआ। यह है क्या? "दोष स्वीकृतियों" के अवशेष जिनको तुमने ही स्वयं अस्वीकार किया था? उसी की प्रतिध्वनि?

या कि शायद, यह सर्वहारा के दृष्टिकोण का मोड़ने के बजाय आम प्रजातन्त्रवादी दृष्टिकोण को मोड़ने का असफल प्रयत्न है? शायद "आम प्रजातन्त्र" से कहते हुये तुमने इस

प्रकार बकवास (क्षमा करना इस शब्द के लिये) करना आवश्यक समझा जैसा कि बच्चों के साथ बातें करने में किया जाता है। शायद निम्न मध्यम श्रेणी वालों से "साधारण चलती भाषा में बोलने" के लिये, थोड़ी देर के लिये उसकी धारणाओं के प्रति रियायत कर देना तुमने आवश्यक समझा?

लेकिन क्या यह तरीक़ा हर तरह से और हर माने में ग़लत नहीं है?

मैंने ऊपर कहा है कि प्रजातन्त्रवादी देशों में सर्वहारा लेखक के लिये अनावश्यक है कि वह "प्रजातन्त्रवाद, जनता उसके विचारों और विज्ञान से अपील करे।" लेकिन रूस में? रूस में भी यह अपील उपयुक्त नहीं है। क्योंकि यहाँ भी वह निम्न मध्यम श्रेणी की पक्षपात पूर्ण धारणाओं की वाहवाही मालूम पड़ेगी। **रूस काया मिस्ल**❀ का इज़गोयेव भी अस्पष्ट आम अपील को इच्छा पूर्वक मान लेगा। ऐसे नारों को चालू करने से क्या फ़ायदा जिन्हें तुम तो आसानी से इज़गोयेववाद से भिन्न बता सकते हो, लेकिन जिन्हें भिन्न समझना पाठक के लिये असम्भव है। **निम्न मध्यम श्रेणी** (कमज़ोर, करुणा जनक, ढुलमुल यक़ीन, अशक्त, थके हुये, निराश, ईश्वर-चिन्तक, आत्म-चिन्तक, ईश्वर-निर्माण, ईश्वर-उत्पादन, आत्म-प्रताड़ना, **असहाय**

❀**रूसी विचार,** एक साप्ताहिक पत्रिका जो बड़े रूसी पूँजीपतियों के साम्राज्यवादी कोशिशों का समर्थन करता था।

अराजकतावादी ओह ! कितनी सुन्दर अभिव्यक्तियाँ है ! इत्यादि इत्यादि) और **सर्वहारा** (कुशाग्र बुद्धि, नारों से मुक्त "पूँजीवादी विज्ञान तथा जनमत" और अपने विचार, पूँजीवादी प्रजातन्त्र-बाद और सर्वहारा प्रजातन्त्रवाद में अन्तर करने वाले) के बीच स्पष्ट अन्तर बताने के बजाय, पाठक के लिये प्रजातन्त्रात्मक गुलकारियाँ क्यों तैय्यार करो ?

तुमने आखिर ऐसा किया ही क्यों ?
यह तो बड़ी उलझन की बात है,

तुम्हारा वी. यू.

पुनश्च:

मैंने रजिस्टर्ड पोस्ट से उपन्यास भेज दिया है। तुम्हें मिल गया ?

दवा कराये जाओ, मैं गंभीरता पूर्वक यह कह रहा हूँ, जिससे तुम बिना ज़ुकाम हुये जाड़े में यात्रा कर सको (जाड़ों में सफ़र करना खतरनाक है),

तुम्हारा, वी. उलिया नोव

(नवम्बर १९१३ के मध्यम में लिखा गया। पहिलीबार **लेनिन संग्रह** १ में, १९२४ में प्रकाशित)

२.

ईश्वर के प्रश्न पर, परमात्मा और उससे सम्बन्धित सभी प्रश्नों पर तुम अपने को ही काट देते हो—मेरे विचार से यह वही असंगति है जिसे मैंने अपनी कैप्री वाली पिछली भेंट के अवसर पर बताया था। तुमने वपरियोदिस्तों* से सम्बन्ध-विच्छेद तो कर लिया था (या सम्बन्ध विच्छेद करते हुये मालूम पड़ते थे) लेकिन "वपरियोदिस्तवाद" के सैद्धान्तिक आधार को साफ़ साफ़ नहीं समझे थे।

इस मामले में भी यही बात सच है। तुम कहते हो कि तुम परेशान हो और तुम "यह नहीं समझ सके कि 'इस वक्त के लिये' वाक्यांश कैसे आ पड़ा।" और फिर भी, इसी समय, तुम ईश्वर के विचार और ईश्वर के निर्माण का समर्थन करते हो!

"ईश्वर उन विचारों की मिलावट है जिन्हें फिरक़ों, राष्ट्रों और मानवता ने तफ़मील से सोचा है, जो सामाजिक भावनाओं को उभारते और संगठित करते हैं, जो व्यक्ति को समाज के साथ एक में मिलाते हैं और जीव-विज्ञान सम्बन्धी व्यक्तिवाद कम करते हैं।"

---

*वपरियो (आगे) पत्रिका के समर्थक जो तथाकथित "वाम पक्षी बोलशेविकों", लूनाचारस्की, बोग्दानोव आदि की तरफ़ से १९०८-१९१७ में निकलता था। इसे १९०४ में बोलशेविकों द्वारा प्रकाशित वपरियाद से जो कि इस्क्रा के मेनशेविकों के हाँथ में चले जाने के बाद निकलता था, नहीं मिलाना चाहिये।—संपादक

स्पष्टतः यह सिद्धान्त बोग्दानोव और लूनाचारस्की के अनुमानों की तरह का ही है।

और, यह स्पष्टः ग़लत और स्पष्टतः प्रतिक्रियावादी है। ईसाई समाजवादियों की तरह ("समाजवाद का" अधिक दुखदायक रूप और उसकी सबसे घृणित विकृति) तुम भी एक ऐसी तिकड़म से काम लेते हो (हालाँ कि तुम्हारी नीयत बहुत अच्छी है) जो पुरोहितों के गपड़चौथ से बिल्कुल पूरा-पूरा मिलती जुलती है। वह तमाम बातें जो कि सचमुच अमल में ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से ईश्वर की धारणा के साथ शामिल की जाती हैं (प्रेत पूजा, तर्कहीन धारणायें, अज्ञान और पतन को गौरवान्वित करना एक ओर, और दासता, राजतन्त्रवाद को गौरवान्वित करना दूसरी ओर) छोड़ दी जाती है और उसकी इस ऐतिहासिक और सामाजिक सत्य के स्थान पर एक सुन्दर, छोटा निम्न मध्यम श्रेणी का वाक्यांश जोड़ दिया जाता है (ईश्वर=वह विचार जो सामाजिक भावनाओं को उभारता और संगठित करता है)।

इससे तुम्हारा मतलब है "अच्छा और सुन्दर", "सत्य", "न्याय" और इसी तरह की चीजें। लेकिन तुम्हारी मंशा—तुम्हारी अपनी आन्तरिक "......इच्छा" मंशा ही बनकर रह गई। लिखे जाने के बाद तुम्हारे शब्द जनता तक पहुँचे और उनका अर्थ तुम्हारे नेक इरादों द्वारा नहीं लगाया गया बल्कि

सामाजिक शक्तियों के सम्बन्ध द्वारा—श्रेणियों के निश्चित बाह्य-अन्तर सम्बन्धों द्वारा लगाया गया।

फलतः, ये सम्बन्ध तो जैसे थे वैसे थे (चाहे तुम्हारी यह इच्छा रही हो अथवा नहीं) तुमने पुरोहितों, पुरिशकेविख, निकोलस द्वितीय और स्त्रूव के विचारों को सजा दिया और मीठा कर दिया। लेकिन सचमुच ईश्वर का विचार लोगों को गुलाम रखने में उनकी सहायता करता है। ईश्वर के विचार को फिर से सजा कर तुमने उन शृंखलाओं की मरम्मत कर दी जिनसे अनजान मजदूर और किसान बँधे हैं। "वह देखो!" पार्सन और कम्पनी कहेगी—"देखो, कितना सुन्दर और बुद्धि-मत्ता पूर्ण विचार (ईश्वर का विचार) है यह! तुम्हारे प्रजा-तन्त्रवादी, तुम्हारे नेता इसे मानते हैं; और हम (पार्सन और उनके साथी) उसी विचार को कार्यान्वित करते हैं।"

यह कहना सच नहीं है कि ईश्वर उन विचारों की मिलावट है जो सामाजिक भावनाओं को उभारते और संगठित करते हैं। यह बोग्दानोववादी आदर्शवाद है जो विचारों के भौतिकवादी मूल को छिपा देता है। ईश्वर (ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से) पहिले तो उन विचारों की मिलावट है जो मानव प्राणी के अज्ञान और उसकी गुलामी के कारण-एक तो प्राकृतिक शक्तियों के कारण और दूसरे श्रेणी अत्याचार के कारण, बन गये हैं—ये वह विचार हैं जो इस अज्ञान को क़ायम रखते हैं और श्रेणी संघर्ष को ठंढा कर देते हैं। इतिहास में एक ऐसा

समय था जबकि, इस उपद्रव के बावजूद भी, और ईश्वर के विचार का यही असली अर्थ है भी, प्रजातन्त्रवादी और सर्वहारा संघर्ष ने एक धार्मिक विचार का दूसरे के विरुद्ध संघर्ष का रूप लिया।

लेकिन उस समय को बीते बहुत दिन हो गये।

इस समय, रूस ही की तरह युरोप में, ईश्वर के विचार की प्रत्येक रक्षा और औचित्य-चाहे वह कितना ही सुसंस्कृत और अच्छे मन्तव्यों से हो—प्रतिक्रिया का औचित्य है।

तुम्हारी परिभाषा कि—ईश्वर उन विचारों की मिलावट है "जो सामाजिक भावनाओं को उभारते और संगठित करते हैं और समाज के साथ व्यक्ति को जोड़ देते हैं जिससे जीव विज्ञान-वादी व्यक्तिवाद कम हो सके" बिल्कुल प्रतिक्रियावादी और पूर्णतया पूँजीवादी है।

यह प्रतिक्रियावादी क्यों है? क्योंकि यह जीव-विज्ञान के "क्षेत्र को कम" करके दासत्व भावनापूर्ण-पुरोहितवादी विचार को पुनर्जीवित करता है। सच तो यह है कि "जीव विज्ञानवादी व्यक्तिवाद" का क्षेत्र ईश्वर के विचार से कभी भी कम नहीं हुआ। इसे तो प्रारम्भिक काल के "गरोहों" और घरानों ने कम किया था। ईश्वर के विचार ने हमेशा "सामाजिक भावनाओं" को सुलाया और उन्हें तेजी में कमी किया है और जीवित प्राणियों के स्थान पर मृतकों में दिलचस्पी पैदा की है। इसमें हमेशा गुलामी की भावना (सब से बुरी भयावह गुलामी) मिली-जुली

रही है। ईश्वर के विचार ने कभी भी "व्यक्ति को समाज के साथ नहीं मिलाया !" ईश्वरी सत्ता में विश्वास के सहारे उसने हमेशा दबे हुये वर्गों को दबाने वालों के ताबे रहने को मजबूर किया है !

तुम्हारी परिभाषा पूँजीवादी है (अवैज्ञानिक और अनैतिहासिक है) क्योंकि यह साधारण "राबिन्सन क्रूसो" की धारणाओं से सम्बन्ध रखता है—यह एक निश्चित ऐतिहासिक युग में बने हुये विशिष्ट श्रेणियों से सम्बन्ध नहीं रखता।

सिरिया और उसी तरह की बर्बर जातियों (और अर्ध-बर्बर जातियों के भी) के ईश्वर के विचार की एक बात है, स्त्रूव और कंपनी की बिल्कुल दूसरी बात है। दोनो हालतों में, बहर हाल, इस विचार को श्रेणी शासन द्वारा पाला गया है, और इस विचार ने बदले में श्रेणी शासन को पाला है। छोटे ईश्वरों और देवता की "आम" धारणायें "लोगों" के अज्ञान का फल हैं, बिल्कुल ठीक उसी तरह जैसे ज़ार, भूत-प्रेतों और औरतों का बाल पकड़ कर खींचने के प्रति लोगों की "आम" धारणा है। किस तरह तुम ईश्वर के प्रति लोगों की "आम" धारणा को "प्रजातन्त्रवादी" कहते हो यह मेरी समझ के बिल्कुल बाहर है।

यह कहना सच नहीं है कि दार्शनिक आदर्शवाद "हमेशा केवल व्यक्ति के हितों पर ही नज़र रखता है।" क्या डेकार्टी के मस्तिष्क में व्यक्ति के हितों का ध्यान गेसेंदी से अधिक था ? या फ़िशे और हेगिल के दिमाग़ में फ़ेवरबाख से अधिक था ?

"ईश्वर का उत्पादन व्यक्ति और समाज में सामाजिक सिद्धान्तों के आगे बढ़ने और एकत्रित होने की प्रक्रिया है"— यह निश्चय ही भयावह है ! अगर रूस में आज़ादी होती, तो सारा पूँजीवादी वर्ग इतने पूर्ण पूँजीवादी समाजशास्त्र और धर्म शास्त्र के लिये तुम्हारी प्रशंसा करता !

अस्तु, इस समय के लिये इतना ही काफ़ी है ; जैसा कि ज़ाहिर है यह ख़त बहुत काफ़ी लम्बा हो गया। फिर मैं प्रेम से तुमसे हाथ मिलाता हूँ और सुन्दर स्वास्थ्य की कामना करता हूँ।

तुम्हारा
वी० यू०

(दिसम्बर १९१३ में लिखा गया और प्रथम बार १९२४ में लेनिन-संग्रह १ में प्रकाशित हुआ।)

—०—

८

कम्युनिस्ट और धार्मिक नैतिकता

सोवियत युनियन की यंग कम्युनिस्ट लीग की तीसरी अखिल रूसी काँग्रेस के अवसर पर दिये गये भाषण से (३ अक्तूबर, १९२०)।

सबसे पहले मैं यहाँ कम्युनिस्ट आचार के प्रश्न पर विचार करूँगा।

तुम्हें कम्युनिस्ट बनने के लिये अपने को शिक्षित करना है। यंग कम्युनिस्ट लीग का काम है कि वह अपने अमली कार्यों को इस प्रकार संगठित करे कि अध्ययन, संगठन और अपने को मज़बूत करते समय और लड़ते समय वह अपने को और उन्हें जो कि उसे अपना नेता मानते हैं शिक्षित करता रहे। इस प्रकार यह कम्युनिस्टों की शिक्षा होगी। आज के नौजवानों की सारी शिक्षा-दीक्षा इस प्रकार की होनी चाहिये कि उससे उनके नस नस में कम्युनिस्ट आचार भर जाय।

लेकिन क्या कम्युनिस्ट आचार ऐसी कोई वस्तु है भी? कम्युनिस्ट नैतिकता की तरह की कोई चीज़ है भी? निस्सन्देह

है। आम तौर से यह कहा जाता है कि हमारी कोई नैतिकता नहीं है, और अक्सर पूँजीवादी लोग कहा करते हैं कि हम कम्यु- निस्ट तमाम नैतिकता से इन्कार करते हैं। मसलों को उलझाने, मज़दूरों-किसानों की आँखों में धूल झोंकने के उनके तरीक़ों में से एक यह भी है।

किन मानों में हम आचार और नैतिकता से इनकार करते हैं?

उन माने में जिनमें कि पूँजीवादी इनका उपदेश करते हैं, वह माने जो कि इन आचारों को ईश्वरीय आज्ञाओं से निकालता है। बेशक हम कहते हैं कि हम ईश्वर में विश्वास नहीं करते। हम अच्छी तरह जानते हैं कि पुरोहित, ज़मीदार और पूँजीवादी सभी ईश्वर का नाम लेकर बोलते हैं जिससे कि वे शोषक की हैसियत से अपने हितों की रक्षा कर सकें। या, अपनी नैतिकता को आचार के आदेशों से, ईश्वर के आदेशों से ढूँढ़ निकालने के बदले उन्होंने उन्हें उन आदर्शवादी अथवा अर्ध-आदर्शवादी वाक्यों से लिया जो कि सार रूप में आमतौर से हमेशा ईश्वरीय आज्ञाओं के अनुरूप रहे हैं।

हम उन तमाम आचारों को मानने से इन्कार करते हैं जो कि ईश्वरीय अथवा श्रेणी-हीन धारणाओं से लिये गये हैं। हम कहते हैं कि यह धोखा है, मक्कारी है और ज़मीदारों और पूँजी- पतियों के हित में मज़दूरों और किसानों के दिमाग़ में यह भ्रम फैलाता है।

हम कहते हैं कि हमारा आचार सर्वहारा के श्रेणी-संघर्ष के बिल्कुल ताबे है। हम सर्वहारा के श्रेणी-संघर्ष की सच्चाइयों और आवश्यकताओं से अपना आचार बनाते हैं।

पुराना समाज तमाम मजदूरों और किसानों के ऊपर जमींदारों और पूँजीपतियों के जुल्म के आधार पर खड़ा था। हमें इस समाज को नष्ट करना पड़ा। हमें इन जमींदारों और पूँजीपतियों को उखाड़ फेकना पड़ा। लेकिन ऐसा करने के लिये संगठन की आवश्यकता पड़ी। ईश्वर ऐसा संगठन नहीं बना सकता था।

ऐसा संगठन तो केवल फ़ैक्टरियों और कारखानों में ही बन सकता था, यह केवल सीखे हुये, अपनी पुरानी नींद से जागे हुये सर्वहारा द्वारा ही बनाया जा सकता था। केवल उस समय जब कि यह श्रेणी पैदा हो चुकी थी, जब आन्दोलन शुरू हुआ, जिससे कि हम वहाँ तक पहुँच सके जहाँ कि आज हम हैं—यानी संसार में सब से कमजोर देशों में से एक देश, जिसने तीन साल तक सारे संसार के पूँजीपतियों के हमलों का सामना किया, में सर्वहारा क्रान्ति की सफलता तक। हम देख रहे हैं कि किस प्रकार सारे संसार में सर्वहारा आन्दोलन बढ़ रहा है। और, अब हम अनुभव के बल पर कह सकते हैं, कि केवल सर्वहारा ही उस शक्ति पुँज को संगठित कर सकता था जो अपने साथ एक समय के असंगठित किसान को आगे ले चल रहा है—यह वही शक्ति है जिसने तमाम शोषकों के आक्रमणों का मुक़ाबिला

किया है। केवल यही वर्ग मेहनतकश लोगों को अपनी शक्तियों को एक में मिलाने, अपनी बिखरी पाँति को बटोरने और एक दृढ़ कम्युनिस्ट समाज को क़ायम करने, बनाने और पूरा करने में सहायता दे सकता है।

इसलिये हम कहते हैं कि जो आचार मानव समाज के बाहर से बना है उसकी स्थिति हमारे लिये है ही नहीं, वह धोखा है। हमारे लिये तो सर्वहारा श्रेणी-संघर्ष के अन्तर्गत ही आचार की स्थिति है।